MTTP–001

बांग्ला–हिंदी अनुवाद में स्नातकोत्तर सर्टिफिकेट कार्यक्रम
(पी.जी.सी.बी.एच.टी.)

अनुवाद परियोजना

(जनवरी 2021 और जुलाई 2021 सत्रों में
प्रवेश लेने वाले विद्यार्थियों के लिए)

इग्नू
जन-जन का
विश्वविद्यालय

अनुवाद अध्ययन और प्रशिक्षण विद्यापीठ
इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
मैदानगढ़ी, नई दिल्ली–110 068

Scanned with CamScanner

अनुवाद परियोजना
(एम.टी.टी.पी.-001)

(जनवरी 2021 और जुलाई 2021 सत्रों में प्रवेश लेने वाले विद्यार्थियों के लिए)

कार्यक्रम कोड : पी.जी.सी.बी.एच.टी.

जैसा कि आपको बताया जा चुका है कि 'बांग्ला–हिंदी अनुवाद में स्नातकोत्तर सर्टिफिकेट कार्यक्रम' (पी.जी.सी.बी.एच.टी.) को पूरा करने के लिए आपको चार–चार क्रेडिट के चार पाठ्यक्रम करने होंगे। इस स्नातकोत्तर सर्टिफिकेट कार्यक्रम का चौथा पाठ्यक्रम (एम.टी.टी.पी.–001) 'अनुवाद परियोजना' का है। इस परियोजना के अंतर्गत आपको दी गई सामग्री का अनुवाद करना है। अनुवाद के लिए सामग्री संलग्न है। इसका अनुवाद करके आपको मूल्यांकन के लिए प्रस्तुत करना है। ध्यान रहे कि यह 'अनुवाद परियोजना' एक स्वतंत्र पाठ्यक्रम के समकक्ष है। इसमें उत्तीर्ण होना आवश्यक है।

परियोजना करने का तरीका

प्रस्तुत सामग्री को ध्यानपूर्वक पढ़ें। इससे आप समझ जाएँगे कि यह किस विषय से संबंधित है और इसमें प्रमुखतया क्या कहा गया है। इसके बाद आप इस सामग्री में से वे शब्द और मुहावरे आदि छाँटिए जिनका अर्थ अथवा जिनके हिंदी पर्याय आपको पता नहीं हैं। इन शब्दों को एक कागज़ पर नोट कर लीजिए। ध्यान दीजिए कि अनूद्य सामग्री के अनुवाद करते समय आपको कौन–कौन से कोश देखने की जरूरत है। विषय के अनुरूप समुचित कोशों में से उन शब्दों के पर्याय नोट कर लीजिए।

अब अनूद्य सामग्री को एक बार पुनः पढ़िए। गौर कीजिए कि अब की बार यह आपको ज्यादा अच्छी तरह समझ आती है कि नहीं। यदि कोई अंश समझ में न आ रहा हो तो उसे फिर से पढ़िए और पता लगाइए कि कठिनाई कहाँ है – शब्दों का अर्थ समझने में अथवा वाक्य–विन्यास को समझने में। यदि कोई वाक्य न समझ आ रहा हो तो उसे दूसरी बार, तीसरी बार पढ़िए।

इस सामग्री में प्रयुक्त संक्षिप्तियों पर ध्यान दीजिए। उनके पूर्ण रूप क्या हैं, जानने की कोशिश कीजिए। अधिकांश संक्षिप्तियों के पूर्ण रूप आपको इस सामग्री में ही मिल जाएँगे।

इस तरह अनूद्य सामग्री का अर्थ भली–भाँति समझ लेने के पश्चात उसका अनुवाद आरंभ कीजिए। अनुवाद करते समय भी शब्दकोश का भरपूर उपयोग कीजिए। जिन शब्दों के अर्थ आपको पता हैं उनके लिए भी शब्दकोश देखिए ताकि विषय और संदर्भ के अनुकूल पर्यायों का चयन कर सकें। वाक्य–विन्यास लक्ष्य भाषा (अर्थात् हिंदी/मलयालम) की प्रकृति के अनुसार कीजिए। यानी आपका बनाया वाक्य ऐसा लगे कि आप अनुवाद नहीं कर रहे बल्कि उस भाषा में मूल रूप में लिख रहे हैं। ऐसा तभी होगा जब आपकी वाक्य–रचना स्रोत में कही गई बात का अनुकरण न होकर लक्ष्य भाषा की कथन–शैली के अनुरूप और सहज होगी।

एक पैराग्राफ अथवा एक पृष्ठ का अनुवाद करने के बाद अपने अनुवाद को मूल सामग्री से मिलाइए और देखिए कि आपके अनुवाद का वही अर्थ निकल रहा है जो मूल कथन में कहा गया है। यदि अंतर दिखाई दे तो अपने अनुवाद में सुधार कीजिए। पूरी तरह आवश्स्त होने के बाद अनुवाद को आगे बढाइए। अगले पैराग्राफ/पृष्ठ के अनुवाद के बाद फिर यही जाँच–प्रक्रिया दोहराइए और अनुवाद करते जाइए।

अनुवाद पूरा करने के पश्चात उसे एक बाद फिर मूल सामग्री से मिलाइए और जाँच कीजिए कि आपका अनुवाद और मूल सामग्री समान अर्थ प्रकट करते हैं। यह भी जाँच कीजिए कि कहीं कोई पैराग्राफ, वाक्य अथवा वाक्यांश अनुवाद होने से छूट तो नहीं गया है। तत्पश्चात अनूदित सामग्री को साफ–साफ लिखकर हस्तलिखित रूप में लिखिए अथवा टंकण की व्यवस्था कीजिए।

Scanned with CamScanner

अनुवाद परियोजना की प्रस्तुति

- अनुवाद परियोजना फुलस्केप आकार के कागज पर पर्याप्त हाशिया छोड़ते हुए एक तरफ टंकित कराके और बाइडिंग कराके प्रस्तुत करें।
- अनूदित परियोजना के आरंभिक पृष्ठ पर आपके इस कार्यक्रम का शीर्षक, पाठ्यक्रम कोड और शीर्षक, नामांकन संख्या, नाम, पता, अध्ययन केंद्र का कोड लिखा होना चाहिए और अंत में आपके हस्ताक्षर एवं प्रस्तुति की तिथि का उल्लेख होना चाहिए। इस तरह, आपकी 'अनुवाद परियोजना' का आरंभिक पृष्ठ इस प्रकार होगा :

कार्यक्रम का शीर्षक :	बांग्ला–हिंदी अनुवाद में स्नातकोत्तर सर्टिफिकेट (पी.जी.सी.बी.एच.टी.)
पाठ्यक्रम कोड :	एम.टी.टी.पी.–001
पाठ्यक्रम का शीर्षक :	अनुवाद परियोजना
अध्ययन केंद्र का नामः	....
नामांकन संख्या :	....
नाम :	....
पता :	....
	....
हस्ताक्षर :	....
तिथि :	....

- अनुवाद परियोजना के साथ एक **प्रमाण–पत्र भी लगाएँ** जिसमें आपके अपने हस्ताक्षर सहित यह प्रमाणित किया गया हो कि आपने यह अनुवाद–कार्य स्वयं किया है और इसके लिए किसी व्यक्ति की सहायता नहीं ली गई है।
- **अनुवाद परियोजना विश्वविद्यालय में निम्नलिखित पते पर व्यक्तिगत रूप से अथवा पंजीकृत डाक द्वारा भेजें** :

  कुलसचिव
  विद्यार्थी मूल्यांकन प्रभाग (SED)
  इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
  मैदान गढ़ी, नई दिल्ली–110068

अनुवाद परियोजना प्रस्तुत करने की अंतिम तिथि

जनवरी 2021 में प्रवेश लेने वाले विद्यार्थियों के लिए : **31 मई, 2021**
जुलाई 2021 में प्रवेश लेने वाले विद्यार्थियों के लिए : **30 नवंबर, 2021**

अंतिम तिथि के बाद भेजी गई परियोजना का मूल्यांकन विलंब से होगा और आप इस अध्ययन कार्यक्रम को देर से पूरा कर सकेंगे।

कृपया ध्यान दें :

प्रस्तुत की गई अनुवाद परियोजना की एक प्रति (फोटोकॉपी) अपने पास अवश्य रख लें।

शुभकामनाओं सहित।

Scanned with CamScanner

बांग्ला-हिंदी अनुवाद में स्नातकोत्तर सर्टिफिकेट कार्यक्रम

(पी.जी.सी.बी.एच.टी)

अनुवाद परियोजना

1- निम्नलिखित का हिंदी में अनुवाद कीजिए 80

(ক)

বিডন স্ট্রিটের স্টার থিয়েটারে চৈতন্যলীলা নাটকের জয়জয়কার। শুধু কলকাতা নয়, গ্রাম-গ্রামাঞ্চল থেকেও লোকে ছুটে আসছে এই নাটক দেখার জন্য। দু মাস ধরে চলছে এই নাটক, এর গান ও সংলাপ লোকের মুখে মুখে, হিন্দু সমাজ আবার কৃষ্ণপ্রেমে মাতোয়ারা। স্টার থিয়েটারের মঞ্চে যেন প্রেমের ঠাকুর শ্রীগৌরাঙ্গ স্বয়ং আবার আবির্ভূত হয়েছেন।

দক্ষিণেশ্বরে রামকৃষ্ণ ঠাকুরের ভক্তমণ্ডলির মধ্যেও মাঝে মাঝে এই নাটকের কথা ঘুরেফিরে আসে। এই ভাবোন্মাদ কালীসাধক সব সময় যে ধর্মতত্ত্ব আলোচনা করেন তা তো নয়, ইয়ার্কি-ঠাট্টা ও চটুল মশকরাও করেন প্রায়ই, এঁর সামনে সব রকম কথাই বলা যায়। ভক্তদের মুখে শুনে শুনে রামকৃষ্ণ ঠাকুরেরও ওই থিয়েটার দেখার সাধ হল।

এক ধর্মাত্মা কামিনীকাঞ্চনত্যাগী সাধক যাবেন রঙ্গালয়ের কৃত্রিম হাসি-কান্নার পালা দর্শন করতে, এ এক অদ্ভুত প্রস্তাব। সেখানে দর্শকদের মধ্যে কতরকম ভোগী-ভণ্ড-লুচ্চা-মাতাল থাকে, তার চেয়ে ভয়ংকর কথা, নটীরা সব বেশ্যা আর নটগুলির চরিত্র রক্ষার কোনও বালাই নেই। স্বয়ং নাট্যকার ও পরিচালক গিরিশ ঘোষ এক প্রখ্যাত মাতাল এবং প্রায়ই কোনও অভিনেত্রীর বাড়িতে রাত্তিরে পড়ে থাকে এবং সেসব কথা প্রকাশ্যে জানাতেও লজ্জা বোধ করে না!

রামকৃষ্ণ ঠাকুরের ভক্তদের মধ্যে মতভেদ আছে, একদল এই বহু আলোচিত নাটকটি দেখার জন্য খুবই উৎসাহী, আর একদল বারাঙ্গনা-সংসর্গে কলুষিত রঙ্গালয়গুলির ধারকাছও মাড়ান না। বেশ্যাদের প্রতি ঘৃণায় দেশের গণ্যমান্য অনেকেই এখনও থিয়েটার বর্জন করে রয়েছেন। নারীদের প্রতি অবিচার ও বঞ্চনায় যাঁর মন সদা কাতর, সেই ঈশ্বরচন্দ্র বিদ্যাসাগরও বেশ্যাদের নটীবৃত্তি অবলম্বন করার ব্যাপারে সহানুভূতি দেখাতে পারেননি, তিনি সাধারণ রঙ্গমঞ্চগুলির সঙ্গে সংস্রব ত্যাগ করায় তাঁর অনুগামীরাও কেউ আসে না। কেশব সেন ও শিবনাথ শাস্ত্রীর দল এইসব থিয়েটার দেখা অতি পাপ মনে করে। কিন্তু রামকৃষ্ণ ঠাকুর, যিনি শুকনো সন্ন্যাসী নন, যিনি রসে বশে থাকতে চান, তিনি এই বেশ্যা প্রসঙ্গ শুনে ঘৃণায় নাসিকা কুঞ্চন করলেন না, তিনি বললেন, আমি তাদের মা আনন্দময়ী দেখব!

তারপর তিনি আরও বললেন, শোলার আতা দেখলে সত্যকার আতার উদ্দীপন হয়। একবার সেই ওরা গড়ের মাঠে বেলুন দেখতে আমায় নিয়ে গেসল। তখন দেখি কি একটি সাহেবের ছেলে একটা গাছে ঠেসান দিয়ে ত্রিভঙ্গ হয়ে দাঁড়িয়ে রয়েছে। দেখাও যা, অমনি কৃষ্ণের উদ্দীপন হল; অমনি সমাধিস্থ হয়ে গেলুম!

মহেন্দ্র মুখুজ্যে নামে এক ভক্তের ঘোড়ার গাড়িতে রামকৃষ্ণ ঠাকুর থিয়েটার দেখতে যাবেন, সঙ্গে আরও কয়েকজন জুটেছে, কিন্তু নরেন্দ্র নেই তাদের মধ্যে। নরেন্দ্র যাবে না?

কে একজন বলল, নরেনের পেটের কী ব্যামো হয়েছে, সে বেশ কিছুদিন আসে না।

পেটের ব্যামোটা সাময়িক, নরেন্দ্র দক্ষিণেশ্বরে আর ঘন ঘন আসতে পারে না অন্য কারণে। সেই যে এক রাতে নরেন্দ্র রামকৃষ্ণ ঠাকুরের বারংবার অনুরোধে মন্দিরের মধ্যে একাকী ঢুকে কালীমূর্তিকে মা বলে সম্বোধন করেছিল, তার পরেও তার বিশ্বাস দৃঢ় হয়নি। সেই রাত্রে পাথরের মূর্তিকে তার ক্ষণিকের জন্য জীবন্ত মনে হয়েছিল, চক্ষে লেগেছিল ঘোর, সর্বাঙ্গে ছিল শিহরন। রামকৃষ্ণ ঠাকুর তাকে ছুঁয়ে দিলে কিংবা তাঁর সংস্পর্শে থাকলে নরেন্দ্রর এরকম ঘোরের মতন হয়, কিন্তু কিছু পরেই তো সে ঘোর কেটে যায়। আবার ফিরে আসে বাস্তব জ্ঞান। যে ভাব-বিহ্বলতা সাময়িক, তা তো কোনও উচ্চস্তরের উপলব্ধি হতে পারে না। সেই উচ্চস্তরে উঠতে না পারলে নিছক সাময়িক অলৌকিক অভিজ্ঞতায় নরেন্দ্রর আস্থা নেই।

Scanned with CamScanner

(খ)

সিঁদুরিয়াপট্টিতে একবার এক ধনীর বাড়ির পোষা হনুমান গৃহস্বামীর শয়নকক্ষ থেকে চুপিসারে একটি পেটিকা নিয়ে চিলের ছাদে উঠে পড়ে। সে ভেবেছিল, অতি সযত্নে রক্ষিত এ পেটিকায় নিশ্চিত কোনও দুর্লভ সুখাদ্য আছে। কিন্তু পেটিকাটি খুলে তার আর নৈরাশ্যের অবধি থাকে না, ভেতরে রয়েছে শুধু গুচ্ছ গুচ্ছ শুষ্ক, অখাদ্য কাগজ। পরম অবজ্ঞা ভরে হনুমানটি সেই কাগজগুলি বাতাসে ওড়াতে থাকে। বলাই বাহুল্য, সেগুলি সব একশো টাকার নোট। সেই উড়ন্ত মুদ্রা সংগ্রহ করার জন্য পথচলতি জনতার হুড়োহুড়ি, ঠেলাঠেলি, কাড়াকাড়ি এমন একটা পর্যায়ে চলে যায় যে, শৃঙ্খলা ফেরাবার জন্য পুলিশ বাহিনী এসে পড়ে। সেই বাহিনীর মধ্যেও কেউ কেউ যে, কর্তব্য ভুলে দু' চারখানা নোট পকেটস্থ করায় ব্যাপৃত হয়নি, এমন কথা জোর দিয়ে বলা যায় না।

টাকা ওড়ানো কথাটা সেই থেকে চালু হয়ে যায়। মনুষ্য শ্রেণীভুক্ত কেউ কেউও ওই হনুমানটির অনুকরণ করে। ইদানীং গুর্মুখ রায় মুসাদ্দি নামে এক মাড়োয়ারিনন্দনের রকম সকমও ওই প্রকার। তার বাবা গণেশদাস মুসাদ্দি ছিলেন একজন বিশিষ্ট ব্যবসায়ী এবং হোর মিলার কোম্পানির প্রধান দালাল। পিতার আকস্মিক মৃত্যুর পর আঠেরো বছরের ছেলে গুর্মুখ বিশাল সম্পত্তির উত্তরাধিকারী হয়। টাকার মূল্যই যেন সে বোঝে না, দু' হাতে টাকা ছড়িয়েই তার আনন্দ। ইয়ার-বক্সি-মোসাহেবও জুটে গেল যথারীতি। সন্ধের পর তারা সারা শহর মাতিয়ে বেড়ায়।

ইদানীং থিয়েটার-নাটকের খুব রমরমা। গুর্মুখ তার সাঙ্গোপাঙ্গদের নিয়ে প্রায়ই থিয়েটার দেখতে আসে। তারা সংখ্যায় দশ-বারোজন হলেও টিকিট কাটে পঞ্চাশখানা। সামনের দু' সারিতে কেউ বসবে না, তারা ইচ্ছেমতন পা তুলে দেবে, নেশার ঝোঁকে আধশোওয়া হবে, যখন তখন বিকট চিৎকার করবে।

গিরিশচন্দ্রের 'সীতাহরণ' নাটকটি খুবই জনপ্রিয় হয়েছে। যেমন অভিনয়, গান, তেমনই চমকপ্রদ দৃশ্য। মঞ্চশিল্পী ধর্মদাস সুর পুষ্পক রথে চেপে রাবণের শূন্যপথে গমন পর্যন্ত দেখিয়ে দিলেন। পুষ্পক রথে সীতাকে হরণ করে নিয়ে যাচ্ছে রাবণ, সীতার ভূমিকায় বিনোদিনী এক একখানি ফুলের গহনা ছুঁড়ে ছুঁড়ে ফেলছে, এক সময় মনে হয় সীতা যেন সম্পূর্ণ নিরাবরণ। সুরামত্ত অবস্থায় গুর্মুখ চেঁচিয়ে উঠল, ওই আওরতের কত কিম্মত ? ওকে আমার চাই !

তার এক বয়স্য বলল, ওদিকে হাত বাড়িয়ো না, বাওয়া ! ও আওরত আগুনের খাপরা। ছুঁতে গেলেই হাত পুড়ে যাবে !

পরের নাটক পাণ্ডবের অজ্ঞাতবাসে বিনোদিনী দ্রৌপদী। একই নারীর কতরকম রূপ ! গুর্মুখ অত অভিনয়-টভিনয় বোঝে না। নাটকের ভাবগর্ভ ভাষাও তার মর্মে প্রবেশ করে না, সে বিনোদিনীকে দেখতে বারবার আসে। এবং দুরন্ত বালকের মতন আবদার ধরে, ওই আওরতকে আমার চাই !

কিন্তু তার সঙ্গীরা সকলেই জানে, এই ছলা-কলাময়ী নারী এক প্রভাবশালী ধনীর রক্ষিতা, নিছক টাকা পয়সার লোভ দেখিয়ে তাকে ভাঙিয়ে আনা যাবে না।

একদিন গুর্মুখ আর তার দলবল নাটক শুরু হয়ে যাবার পর এসে টিকিট চাইল। সে দিন সব আসন পূর্ণ হয়ে গেছে। কিন্তু গুর্মুখ সে কথা মানবে কেন ? গুচ্ছ গুচ্ছ টাকা বার করে ফরফর করে ছড়াতে ছড়াতে সে চ্যাঁচাতে লাগল, টিকিট লাও ! টিকিট লাও ! সেই সন্ধ্যায় তাদের নেশার পরিমাণ বেশিই হয়েছিল, ভেতরে ঢুকে এসে তারা এমন হট্টগোল শুরু করে দিল যে, অভিনয় বন্ধ হবার উপক্রম। ন্যাশনাল থিয়েটারের মালিক প্রতাপচাঁদ জহুরীর এই বেলেল্লাপনা সহ্য হল না। তিনি দারোয়ানদের হুকুম দিলেন ওদের বার করে দেবার জন্য।

(গ)

আমার চেনাশোনার মধ্যে দু-জন তরুণ কবিকে আমার ঈর্ষ্যা হয়। তাঁরা দু-জনেই একান্ত অল্পবয়স্ক, ছাত্র এবং কবিপ্রতিভান্বিত। তাঁদের একজন অবশ্য সুভাষ মুখোপাধ্যায়, যশোরশ্মি যাঁর দেশব্যাপী এবং মার্ক্সিস্ট অঞ্চলে যিনি প্রতিনিধি-বিশেষ। মণীন্দ্র রায়ের আরম্ভ তাঁর বন্ধুর মতো আপাতবিস্ময়কর নয়। কিন্তু কবিত্ব তাঁর অবিসংবাদী এবং প্রগতির স্বাস্থ্যে তাঁর স্বকীয়তার আভাস উজ্জ্বল।

হয়ত সে-দীপ্তি কিঞ্চিৎ তির্যকচারী ব'লে ঈষৎ অস্পষ্ট। মণীন্দ্রের মনে সমাজ-চৈতন্যের বেদনাতেই হয়ত একটা বাঁকা হাসির ভাব আছে! সেটা প্রকাশ্যও ঠিক নয়, কিন্তু একটা কিম্ভূত মজার ভাব—grotesquerie ও drolleryর এই মিশ্রণ মণীন্দ্রের পুস্তকাদির নাম দেওয়াতেই দ্রষ্টব্য। তাঁর 'ত্রিশঙ্কুমদন', 'ত্র্যম্বক' বা 'একচক্ষু' শুধু নামেই নয়, চেহারাতেও ঘাব্‌ড়ে দেবার মতো।

কিন্তু এই কিম্ভূত মজাদার চটক কাব্যের রূপে, ছন্দের দক্ষতায়, বক্তব্যের চাপে সৌভাগ্যবশত সংযত হয়েছে। বলা যায়, রূপান্তরিতই হয়েছে কবিতার ঐশ্বর্যে, একটা দ্বিধাগ্রস্ত বৈদগ্ধ্যের আমেজে, যেটা পরিণত মনোবৃত্তির, জীবনের অভিজ্ঞতারই লক্ষণ। তাই প্রথম কবিতার যে-আরম্ভ, তার গাম্ভীর্য হ'য়ে ওঠে স্বাভাবিক, আন্তরিক অথচ ভারিক্কে বা বামপন্থী বুলি নয়।

ম্রিয়মাণ হৃতশক্তি হে স্বদেশ—

কারণ এ-স্বদেশসম্ভাষণ সত্তার বহিরঙ্গবিলাস নয়। তা লেখকের আত্মজিজ্ঞাসারই অবশ্যম্ভাবী ও ক্রমবর্ধিষ্ণু বিকাশ। বহির্বিলাসী প্রগতিবাদের তুচ্ছতা ও অন্তর্বিলাসী আত্মসর্বস্বের ব্যর্থতার গ্লানি মুক্তি পায় যে মার্ক্সিস্ট অবৈকল্যে, চৈতন্যের অখণ্ডতায়, মনে হয় তার আভাস মণীন্দ্রের কাব্যচৈতন্যে বর্তমান।

(৪)

হাতের তুলিটা নামিয়ে একটু চুপ করে বাবলু বলল, সকালে বাড়ির বারান্দায় এক ভদ্রমহিলাকে দেখলাম। দেখেই মনে হল খুব চেনা। তারপর আর দেখিনি।

একটু হাসল অশোক, আমারও মাঝে মাঝে কাউকে দেখলে ওই রকম চেনা মনে হয়।

কোনও জবাব দিল না বাবলু। বেলা পড়ে এসেছিল। কাজ শেষ করে ভারা থেকে নেমে আসে দু'জন। জিনিসপত্র গুছিয়ে নিয়ে অশোক বলল, বিয়েবাড়ি যেতে হবে বাবলুদা, আমি চলি।

বাবলু মাথা নাড়ে, তুই যা, আমিও যাচ্ছি।

কয়েকটা রঙের খালি টিন একপাশে ছুড়ে ফেলে দেয় বাবলু। সবকটা তুলি ব্যাগে ভরে। এবার বাড়ি ফিরবে। রাস্তা পার হয়ে দোতলা বাড়িটার সামনে এসেই থমকে গেল।

খুব চেনা একজন মহিলা। কিন্তু যার কথা ভাবছে যদি তিনি না হন! একবার মাত্র দেখা, ভুল হতেও পারে। একটা চাপা অস্বস্তি মনের মধ্যে খচখচ করছিল। কিছুক্ষণ চুপ করে দাঁড়িয়ে থাকে। শেষ পর্যন্ত দ্বিধাটুকু কাটিয়ে এগিয়ে গেল বাবলু। না হলে বলবে ভুল হয়েছে।

বন্ধ দরজা। দেওয়ালের গায়ে কলিংবেল। একটু ইতস্তত করেই বেলটা টিপল বাবলু।

খানিক পরেই দরজা খুলে বেরিয়ে আসেন এক ভদ্রমহিলা। মাঝামাঝি বয়স, ফরসা সুন্দর চেহারা। কয়েকটা মুহূর্ত তার দিকে তাকিয়ে থাকে বাবলু। কতদিন আগের দেখা তবু চিনতে ভুল হয়নি তার। ঠোঁটের কোনায় হাসি ফুটে ওঠে।

—আমায় চিনতে পারছেন দিদি?

অবাক চোখে তার দিকে কয়েক পলক তাকিয়ে থাকেন ভদ্রমহিলা। তিনি কিছু জবাব দেওয়ার আগেই বাবলু আবার প্রশ্ন করে, আপনি তো শিবানীদিদি?

মাথা নাড়লেন ভদ্রমহিলা, হ্যাঁ, আমার নাম শিবানী। কিন্তু আপনাকে তো ঠিক চিনতে পারলাম না!

—আমি বাবলু। আপনার কাছে ছবি আঁকা শিখতাম।

বাবলু! মনে করাতে চেষ্টা করলেন শিবানী। তাঁর কুড়ি বছরের শিক্ষিকাজীবনে অসংখ্য ছেলেমেয়েকে ছবি আঁকা শিখিয়েছেন। দু'-চারজন ছাড়া বেশিরভাগই বিস্মৃতির অতলে হারিয়ে গিয়েছে। তবু সামনে দেখা হলে অনেককে চিনতে পারেন।

বাবলু বুঝতে পারছিল তাকে চিনতে পারেননি শিবানী। সামান্য হাসিমুখে বলল, মৌলালির কাছে একটা বাড়িতে আপনি ছবি আঁকা শেখাতেন। আমরা চার্চের উল্টোদিকে থাকতাম।

পলকে শিবানীর মনের আকাশে এক শিশুর মুখ ভেসে ওঠে। আর্ট কলেজ থেকে তখন সবে মাত্র পাস করেছেন। দু'চোখ ভরা স্বপ্ন। বাড়ির অবস্থা ভাল নয়। ছবি আঁকার রং-তুলি-কাগজ কেনার জন্যই একটা ছবি আঁকার স্কুলে, কাজ নিয়েছিলেন। দশ-বারোটা ছেলের সঙ্গে বাবলুও ছবি আঁকা শিখত। আলাদা করে কোনওদিন তেমন কিছু চোখে পড়েনি। সেদিন মাইনের টাকা আনতে স্কুলে গিয়েছিলেন দুপুরবেলা। একা রাস্তা দিয়ে হাঁটছিলেন। একটা গাড়িবারান্দার নীচে আসতেই থমকে গিয়েছিলেন। বাবলু কলাইয়ের থালায় করে মাটিতে বসে ভাত খাচ্ছে। পাশে একটা বউ, তার থালাতেও ভাত বাড়া। অবাক গলায় প্রশ্ন করেছিলেন, তুই এখানে?

—আমরা তো এখানেই থাকি!

ঠিক যেন বিশ্বাস করতে পারছিলেন না শিবানী। ফুটপাথের একটা ছেলে তার কাছে ছবি আঁকা শেখে! চোখের কোনায় জল টলটল করে উঠেছিল। বাবলু পাশের বউটাকে কিছু বলতেই তাড়াতাড়ি সে উঠে দাঁড়াল।

—নমস্কার দিদিমণি। আপনি ওকে ছবি আঁকা শেখান!

—হ্যাঁ। তুমি?

—আমার ছেলে। ছবি আঁকার খুব শখ। রোজ ঘ্যানঘ্যান করে। আমি লোকের বাড়ি বাসন মেজে খাই। পয়সা পাব কোথায়? এক বাড়িতে বাসন মাজি, তারাই ভর্তি করে দিয়েছে। দু'-এক মাস হয়তো মাইনে দেবে, তারপর কী হবে? আমাদের ঘরে কি এইসব মানায়!

শিবানী কেমন বিহ্বল হয়ে গিয়েছিলেন। চোখ দুটো বড় বড় করে তার দিকে তাকিয়ে আছে বাবলু। কী করুণ এক আর্তি ফুটে উঠেছে তার দু'চোখে! শিবানীর মনে হয়েছিল কে জানে হয়তো এই আকুতিই ওকে মহান শিল্পী করে তুলবে, পৌঁছে দেবে পথের ধুলো থেকে শিল্পের রাজসিংহাসনে। অস্ফুটে বলেছিলেন, তোকে মাইনে দিতে হবে না, রোজ স্কুলে আসবি। আমি তোকে শেখাব।

সেই বাবলু। কতদিন পরে দেখা। স্মৃতির জগৎ থেকে বাস্তবে ফিরে এলেন শিবানী।

Scanned with CamScanner

ইরাবতী ইতিমধ্যে ভিতরে ভিতরে ভয়ানক উত্তেজিত হয়ে উঠেছিল। সে বলে উঠল, 'নির্মল বসু! উনি কি এখনও ফিল্ম করেন?'

'ফিচার করেনি বহুদিন, দু'-তিন বছরে এক-আধটা ডকুমেন্টারি করে। তবে, ছোট অ্যাড-ফিল্ম এখনও প্রায়ই করে।'

'উনি আমাকে ওঁর ইউনিটে জায়গা দেবেন, আমাকে শেখাবেন?' ইরাবতী রুদ্ধশ্বাসে জানতে চাইল।

'দেখা যাক। জীবনযাপনের আর সব ক্ষেত্রে নির্মল নরমসরম গতানুগতিক প্রকৃতির মানুষ হলেও, ছবির বিষয়ে ভীষণ মুডি, খুব মেজাজি ফিল্মমেকার। অবশ্য, আমাকে এখনও ভক্তিশ্রদ্ধা করে। বহুকাল আগে একটা লিটল ম্যাগ এডিট করতাম আমি। নির্মল নিয়মিত লিখত সেখানে। ওরা তখন বাংলা বাজারে তরুণ তুর্কি। আমি ঠান্ডামাথা মাঝবয়সি সম্পাদক। আম্পায়ারও বলতে পারো। মাঝখানে পড়ে কত হাতাহাতি যে থামাতে হয়েছে! কতদিন আগের কথা সব!'

ড. নাগ যে এককালে একটি বিখ্যাত পত্রিকার প্রতিষ্ঠাতা-সম্পাদক ছিলেন তা জানত ইরাবতী। সে মৃদুস্বরে বলল, 'সেই পত্রিকা এখনও তো আছে।'

'থাকবে না কেন! যুগ বদলায়, লেখক, পাঠক, সম্পাদকও বদলে যান। কাগজও বদলায়, কিন্তু রয়েও যায়, অন্তত এক-আধটা। এটা রয়ে গেছে।'

'শুনি অনেক বদলে গেছে এখন।'

'সময়ের সঙ্গে পরিবর্তন যুগেরই ধর্ম। শোনো, আজ নির্মলকে একবার ফোন করব। কী কথা হল আগামীকাল জানিয়ে দেব তোমায়।'

ইরাবতী ঘাড় নাড়ল। তার যা কপাল! নির্মল বসু কি রাজি হবেন? যদি হন তবে হয়তো তার জীবনটাই বদলে যাবে। ইরাবতী মনে মনে নমস্কার করল অবিনকে। আশ্চর্য মানুষ! এত কথার মধ্যে তার মনের কথাটিকে ঠিক আলাদা করে চিনেছেন তিনি। অথচ চিনেছেন যে, সে-কথা একবারও বুঝতে দেননি। চুপিচুপি লিখে তারই হাতে দিয়েছেন ড. নাগকে দেওয়ার জন্য। অবিন মিশকিন! ফিল্মেরও খবর রাখেন। এবং খবর রাখেন নির্মল বসুর মতো প্রায় হারিয়ে যাওয়া এক চলচ্চিত্র নির্মাতার। নির্মল বসু। পরিচিত মহলে, বিশেষত ফিল্ম স্টাডির কোর্স করতে গিয়ে এঁর নাম সে শুনেছে। অসাধারণ পণ্ডিত, অসম্ভব প্রতিভাবান নাকি। শিল্পের বিষয়ে নিজের কাছে তাঁর নিজের বোধই শেষ কথা। সেখানে কোনও সমঝোতা করতে রাজি নন। লোকে বলে ভুল সময়ে ভুল ফিল্ম বানিয়েছেন তিনি। দেশের মানুষ নিতে পারেনি। জনসংযোগের দক্ষতা তাঁর প্রায় শূন্য। চাটুকারিতা একেবারেই আসে না। ফলত স্বদেশ অথবা বিদেশ, কোনও জায়গার কোনও পুরস্কারই কপালে জোটেনি। তাতে থোড়াই কেয়ার করেন। করব না ফিল্ম, যা—বলে চুপচাপ প্রায় সকলের চোখের আড়ালে বাস করছেন দীর্ঘদিন। ডকু ফিল্ম কি অ্যাড ফিল্ম যে আজকাল বানাচ্ছেন, তা জানত না ইরাবতী।

পরদিন দুপুরে ড. নাগের বাড়ি পৌঁছতেই তিনি বললেন, 'নির্মলের সঙ্গে কথা হয়েছে। ও তোমাকে দেখতে চেয়েছে একবার। আজ এখানে কাজ সেরে সোজা চলে যেও ওর বাড়ি।'

তখনই টেনশন শুরু হয়ে গিয়েছিল ইরাবতীর। যখন দক্ষিণে নির্মল বসুর বাড়ির গেটের সামনে পৌঁছল, তখন বুকে দমাদম হাতুড়ি পিটছে কেউ। পুরনো বাংলা ফিল্মে দেখা বাড়ি, তিনতলা। যেন ঘরে ঢুকলেই দেখা যাবে পাহাড়ী সান্যাল আরামকেদারায় বসে পাইপ টানছেন। অথবা, ছবি বিশ্বাস চৌকাঠের ওপারে দাঁড়িয়ে বিখ্যাত ব্যারিটোনে চ্যালেঞ্জ করছেন, 'কে? কী চাই?' গেট পেরিয়ে বারান্দায় উঠে একতলার দরজার বেল বাজাতে, কয়েক মুহূর্ত পরে দরজা খুলে দিলেন এক পঞ্চাশ ছুঁইছুঁই মহিলা। ইরাবতী মুগ্ধ হয়ে চেয়ে রইল তাঁর দিকে। এই বয়সেও কী অসাধারণ সুন্দরী! আর, কী ব্যক্তিত্ব! মহিলা ভারি মিষ্টি হেসে জিজ্ঞেস করলেন, 'তোমারই নাম ইরাবতী?'

ইরাবতী ঢোক গিলে মাথা নাড়ল।

'ভারী সুন্দর নাম। এসো। নির্মল তোমার জন্যে অপেক্ষা করছে।'

মহিলাকে অনুসরণ করে দোতলায় এল ইরাবতী। দরজার পাল্লা হাট করে খোলা একটি ঘরের সামনে এসে দেখল ভিতরে এক লণ্ডভণ্ড কাণ্ড। সারা ঘরের মেঝেয় বইপত্র-কাগজ-কলম-ক্যাসেট-সিডি ছড়িয়ে রয়েছে, কোথাও কোথাও স্তূপাকারে জমা করা রয়েছে এসব। ঘরের কোণে কোণে দেওয়াল ঘেঁষে রাখা আছে গোটা কতক আলমারি, দুটো টেলিভিশন, মিউজিক সিস্টেম, ক্যাসেট-সিডি প্লেয়ার এবং আরও নানা বিচিত্র যন্ত্রপাতি। ঘরের দেওয়াল জুড়ে বিভিন্ন আকৃতির তাক, সেসব তাকে গাদাগাদি ঠাসাঠাসি করে রাখা আছে নানা আকারের বই এবং আরও হরেক বস্তু। বইপত্র যেন উপচে পড়ছে তাক ও আলমারি থেকে। এই হট্টমেলার মধ্যে একটি ধূসর সোফায় কোলে খাতা-পেন ও হাতে বই নিয়ে ডারউইন-ইন-গ্যালাপেগস কেতায় বসে আছেন পাজামা-পাঞ্জাবি পরিহিত এক চশমা-চোখে ভদ্রলোক।

বাড়ির ভিতরে ঢুকে চারপাশ ভয়ানক ঝকঝকে তকতকে সাজানো-গোছানো বলে শুরু থেকেই মনে হয়নি ইরাবতীর। এ বিষয়ে একটু যেন ঢিলেঢালা চলন এই বাড়ির লোকেদের। ইরাবতী না ভেবে পারেনি যে, এইরকম একটি বাড়ির মালকিন হতে পারলে ঘরদোর আরও সাজিয়ে-গুছিয়ে রাখতে পারত সে। তবু, অগোছালো-দর্শন একতলা, তদ্রূপ সিঁড়ি ও দোতলার বারান্দা পেরিয়ে আসার পরও সামনের এই ঘরটাকে প্রথম দর্শনে বিভীষিকা বলেই মনে হল তার। সঙ্গের মহিলা মুচকি হাসলেন।

'ঘর সাজানোর ব্যাপারে আমিও খুব পটু নই।' অকপটে স্বীকার করলেন তিনি। বললেন, 'তবু, যথাসাধ্য চেষ্টা করি। এবং এ বাড়ির সর্বত্র চলে আমার আইন। এই একটি ঘরে কিন্তু সবই বেআইনি।' তিনি ঘরের ভিতরে তাকিয়ে গলার স্বর সামান্য তুলে বললেন, 'নির্মল, ইরাবতী এসেছে।'

বাবর কথা রাখত। এক-এক কাপ কফি খেয়েই দু'জনে উঠে পড়ত। ইরাবতী মনে মনে প্রশংসা করত তার। সে আন্দাজ করত, বাবর তার প্রেমে পড়েছে। বুঝে উঠতে পারত না, সে নিজে বাবরের প্রেমে পড়ছে কিনা।

একদিন ইরাবতী বাবরকে বলল, 'তোমাকে ভাল সিনেমা দেখাব বলেছিলাম। তুমি চাইলে আগামীকাল হতে পারে, যাবে?'

'অফকোর্স!' লাফিয়ে উঠেছিল বাবর। জানতে চেয়েছিল, 'কী সিনেমা? নাম কী?'

'ক্ষুধিত পাষাণ।'

'বাংলা সিনেমা!' বাবর সামান্য গুটিয়ে গিয়ে বলে উঠেছিল।

'কেন? বাংলায় সিনেমা হয় না?'

'হবে না কেন। সত্যজিৎ রায়, মৃণাল সেন, ইয়ে ঋত্বিক ঘটক।'

'এটা তপন সিনহার ফিল্ম।'

'নাম শুনেছি। ওঁর ফিল্ম দেখিনি একটাও।'

'বাকি যাদের নাম বললে, তাদের কার ক'টা ফিল্ম দেখেছ?'

'কেবল সত্যজিতের একটা, গুপী গাইন বাঘা বাইন, ছোটবেলায়।' একগাল হেসে জানাল বাবর।

ইরাবতী স্তম্ভিত হয়ে গিয়ে বলল, 'ইউ মাস্ট বি কিডিং। এদের আর কোনও ফিল্ম দেখনি তুমি? তুমি বাঙালি!'

'ট্রাই টু আন্ডারস্ট্যান্ড, ইরা', বাবর অসহায় ভঙ্গিতে বোঝাতে চাইল, 'ক্লাস সিক্সে সৈনিক স্কুলে ভর্তি হয়েছি। সেখানে কড়া নিয়মকানুনের মধ্যে বোর্ডিংয়ে থেকেছি। তারপর সেখান থেকে পুনে, এন ডি এ। নেক্সট দেরাদুন, আইএমএ। তারপর তো ফোর্সে চাকরি। বাংলায় থাকলাম কই যে বাংলা ফিল্ম দেখব।'

ইরাবতী একটু ধাতস্থ হয়ে জিজ্ঞেস করল, 'গল্পটা পড়েছ?'

'অবশ্যই।' বাবর তৎপর হয়ে জানাল, 'রবীন্দ্রনাথের গল্প। ছোটতেই পড়েছি।'

তপন সিংহের সিনেমার রেট্রস্পেকটিভ চলছে। লাইন দিয়ে টিকিট কাটল ইরাবতী। বাবর একবার মৃদু স্বরে প্রস্তাব দিয়েছিল সে লাইনে দাঁড়াবে। ইরাবতী গম্ভীর মুখে মাথা নাড়তে আর কথা বাড়ায়নি, চুপটি করে দূরে এক পাশে গিয়ে দাঁড়িয়েছিল। গত মাসখানেকে বাবর বুঝতে পেরেছে যে, সেনাবাহিনীর ব্যান্ডের শিভ্যালরিটা ইরাবতীর পছন্দ নয়। শিভ্যালরি বস্তুটাই বোধহয় অপছন্দ তার। পছন্দ-অপছন্দের ধরন আর পাঁচজনের তুলনায় তার বেশ আলাদা। বাবর এই মেয়েটির ধাত মেনে নিয়েছে। মেনে নিয়েছে যে, ইরাবতীর সঙ্গে বন্ধুত্ব বজায় রাখতে গেলে ওর নিয়মেই চলতে হবে।

কাজেই একটু অস্বস্তি হলেও, বাবর দূরে দাঁড়িয়ে, লাইনে দাঁড়ানো ইরাবতীর দিকে নজর রেখেছিল। আর, নিজে নজরে পড়েছিল অন্যান্যদের। অনেকেই ঘুরে ঘুরে দেখছিল এই প্রায় ন্যাড়ামুণ্ডি লম্বা পেটানো চেহারার যুবকটিকে। শুধু চেহারার জন্য নয়, বাবরের দিকে মানুষজনের চোখ চলে যাওয়ার অন্য কারণও ছিল। আশপাশের ছেলেছোকরারা কেউ পকেটে হাত ঢুকিয়ে, কেউ কোমরে হাত রেখে, কেউ একটু এমনিই হেলে, কেউ-বা রেলিংয়ে হেলান দিয়ে দাঁড়িয়ে ছিল। ওই একজন দাঁড়িয়ে ছিল একেবারে সটান, দুই হাত দু'পাশে সোজা ঝুলিয়ে। দু'চোখে তীক্ষ্ণ দৃষ্টি, আপাদমস্তক সদাজাগ্রত ভঙ্গি। যেন প্রতীক্ষায় আছে আদেশের, যে-কোনও মুহূর্তে সক্রিয় সচল হয়ে উঠবে। আগাগোড়া স্থির শরীরে প্রবল গতিময়তার প্রকাশ নজর কাড়েই।

ইরাবতী টিকিট হাতে কাউন্টার থেকে রওনা দিতেই বাবরও তার দিকে এগতে শুরু করল। কাছাকাছি এসে দু'জনে দু'জনের মুখের দিকে চাইল। ইরাবতীর চোখে ভ্রূকুটি ফুটে উঠতে উঠতে মিলিয়ে গেল। সে অনুভব করল চারপাশের মানুষজন তাদের দু'জনকে দেখছে। তাদের মনোভাবের কথা ভাবতে ভাবতেই ইরাবতী মেনে নিল বাবরের পাশে দাঁড়িয়ে তার উত্তেজনামিশ্রিত এক ধরনের অদ্ভুত অনুভূতি হচ্ছে। বাবরের গা ঘেঁষে দাঁড়িয়ে থাকতে তার ভাল লাগছে। লোকে কি তাদের কাপল ভাবছে? বাবরকে তার প্রেমিক ধরে নিয়ে অন্য মেয়েরা ইরাবতীকে হিংসে করছে? দুর! প্রেম!

'ক্ষুধিত পাষাণ' ইরাবতীর বহু বার দেখা সিনেমা। আজ সে যত সিনেমাটা দেখল, তার চেয়ে বেশি বারে বারে আড়চোখে দেখল বাবরকে। দেখল, সে বুঁদ হয়ে গিয়েছে সিনেমায়। ইরা মনে মনে হাসল।—বাংলায় আচ্ছা আচ্ছা সিনেমা আরও আছে ন্যাড়ামুণ্ডি বুদ্ধু, সেসব দেখলে তোমার মিলিটারি চাঁদি গরম হয়ে যাবে।

হল থেকে বেরোনোর পরও অনেকক্ষণ বাবরকে নীরব দেখে ইরাবতী জিজ্ঞেস করল, 'কেমন লাগল, 'ক্ষুধিত পাষাণ'?'

বাবর বুক ভরে শ্বাস নিয়ে শ্বাস ছাড়ল।

'থ্যাঙ্কস ইরাবতী। জীবনে কত কিছু যে মিস করেছি। আজ দু'ঘণ্টায় তার একটুখানি তুমি আমাকে উপহার দিলে।'

এরপর বাকি রাস্তা ইরাবতীও নীরব রইল।

পাড়ার কাছাকাছি এসে ইরাবতী বাবরকে গাড়ি থামাতে বলল।

'এখানেই আমি নেমে যাই।'

'তোমার বাড়ি এখানে?'

'না, আর একটু দূরে।'

বাবর ফের গাড়ি স্টার্ট করার উদ্যোগ করে বলল, 'তাহলে এখানে নামবে কেন? চলো, তোমাকে বাড়িতে নামিয়ে দিয়ে আসি।'

'না। এখানে আমার একটু কাজ আছে।' ইরাবতী ঠান্ডা গলায় বলল।

ইরাবতীর কোনও কাজ তখন ছিল না। সে বাবরের গাড়িতে বাড়ি অবধি যেতে চাইছিল না। এক তো প্রতিবেশীরা আবার গুঞ্জন শুরু করবে, তারও বেশি মা কৌতূহলী হয়ে জানতে চাইবে কার গাড়ি, কী ব্যাপার। মা মনে মনে আবার মেয়ের ভবিষ্যৎ নিয়ে স্বপ্ন দেখতে শুরু করবে। ওই চাপে ইরাবতী আর পড়তে চায় না। আর, নিজের বাড়িটা বাবরকে চেনাতেও চায় না সে। না, আমি না চাইলে আমার কাছে আর আসতে পারবে না কেউ। আমি এখন চাইছি না।

(জ)

প্রথমেই সম্পূর্ণ নতুন পরিবেশে মানিয়ে নিতে অসুবিধে হবে বুঝে পল এঙ্গেল আমাকে সঙ্গে করে নিয়ে গেলেন তাঁর ফার্ম হাউজে, সেটি আয়ওয়া শহর থেকে বেশ কিছুটা দূরে।

দু'পাশে আদিগন্ত হলুদ ফসল, মাঝখান দিয়ে চকচকে মসৃণ কালো রাস্তা। মাঝে মাঝে চোখে পড়ে এক একটি দুধ-সাদা ছোট গির্জা। গাড়ি যাচ্ছে অনবরত, কিন্তু কোনও শব্দ নেই। পল এঙ্গেল গাড়ি চালাতে চালাতে কথা বলতে ভালবাসেন,, প্রখ্যাত নাট্যকার টেনেসি উইলিয়ামস এক সময় আয়ওয়াতে ছিলেন, তাঁর গল্প বলছিলেন। আমি অভ্যেসবশত সিগারেট ধরাতেই তিনি ভ্রূ-কুঞ্চিত করে কয়েক নিমেষ তাকিয়ে রইলেন, তারপর হেসে বললেন, ঠিক আছে, খাও। পরে বুঝেছিলাম, সব কাচ বন্ধ, বাতানুকূল গাড়ির মধ্যে ধূমপান অনুচিত।

আয়ওয়া রাজ্যটিকে অন্য জায়গার আমেরিকানরা মনে করে চাষাভুসোদের দেশ। এ দেশে এক একটি রাজ্য এক একটি নামে চিহ্নিত, যেমন নিউ জার্সিকে বলা হয় উদ্যান রাজ্য, তেমনই আয়ওয়া ফসল রাজ্য বা কর্ন স্টেট। মাইলের পর মাইল গম কিংবা ভুট্টার খেত। তবে, যেহেতু এ দেশে ছোট চাষির অস্তিত্ব নেই, এক একজন শত শত একর জমির মালিক, তাই সেইসব চাষিরা অত্যন্ত ধনী, প্রত্যেকেরই দু'তিনটে গাড়ি, নিজস্ব ছোট প্লেন আছে, এদের বাড়িতে আসল পিকাসো বা সালভাদর দালি'র ছবি ঝোলে। এ রাজ্যে বড় কোনও শহরও নেই, ছোট ছোট শহর অনেকগুলি, বিশ্ববিদ্যালয়ও অনেক। তবু নিউ ইয়র্ক, লস এঞ্জেলিসের মতন বৃহৎ শহরের বদলে নিরুত্তাপ, শান্ত, খুদে আয়ওয়া শহরের বিশ্ববিদ্যালয়েই যেন আন্তর্জাতিক কবি-লেখকদের সমাবেশ, তা নিয়ে আমেরিকার অনেক বুদ্ধিজীবী বিস্ময় প্রকাশ করেছেন।

এটা সম্ভব হয়েছে একমাত্র পল এঙ্গেলের অত্যুৎসাহে। তাঁর ধারণা, পৃথিবীর সব ভাষার কবিরাই পরস্পরের আত্মীয়, তাই তিনি তাদের এক জায়গায় মেলাতে চান। এই কার্যক্রমের খরচ তাঁকে সংগ্রহ করতে হয়েছে ব্যক্তিগত উদ্যোগে। আমেরিকানরা অনবরত এক রাজ্য থেকে অন্য রাজ্যে বাসা বদল করে, তারা বাপ-পিতামহর ভিটে কিংবা ঐতিহ্যের শিকড়ে বিশ্বাসী নয়, কিন্তু পল এঙ্গেল সে ব্যাপারে ব্যতিক্রম, তাঁর জন্ম-কর্ম সবই আয়ওয়াতে; তিনি এ রাজ্যের সুপরিচিত ব্যক্তিত্ব। তিনি এখানকার ধনী চাষিদের কাছে গিয়ে সরাসরি দাবি করেন, তোমরা কবিতার জন্য কিছু টাকা খরচ করো! দাবিটি অনেকের কাছে প্রথমে অদ্ভুত শোনায়। সাধারণ অবস্থা থেকে যারা ধনী হয়, তারা সামাজিক প্রতিপত্তি ও প্রতিষ্ঠার জন্য অনেক অর্থ ব্যয় করে, তারা গির্জা বানায়, হাসপাতাল বা স্কুল-কলেজের জন্য দান করে। প্রখ্যাত শিল্পীদের ছবি কিনে ঘর সাজানোও সামাজিক কেতার মধ্যে পড়ে, যাতে নিজেকে ছবির সমঝদার এবং সংস্কৃতিবান হিসেবেও জাহির করা যায়। তা ছাড়া মূল্যবান ছবি-কেনা এক ধরনের ব্যবসায়িক বিনিয়োগও বটে, জমিজমার মতনই, এসব ছবির দাম বাড়তেই থাকে।

কিন্তু কবিতা? তা তো সামাজিক কেতার মধ্যে পড়ে না। বেশির ভাগ নব্য ধনীর কাছে কবিতা জিনিসটাই একদল পাগলের খেয়াল। তবু পল এঙ্গেলের ঝুলোঝুলিতে এক একজন পাঁচ-দশ হাজার ডলার দিয়ে দেয়। রাই কুড়িয়ে বেল, এ রকম পাঁচ-সাতজনের কাছ থেকে আদায় করতে পারলেই হয়ে যায় যথেষ্ট। অর্থাৎ গম ও ভুট্টা চাষিদের পৃষ্ঠপোষকতায় আয়ওয়া বিশ্ববিদ্যালয়ের ইংরেজি বিভাগে রাইটার্স ওয়ার্কশপ নামে প্রকল্পটি চালু হয়েছে। টাকা আদায়ের নানান বিচিত্র কাহিনী পলই আমাকে শুনিয়েছেন, একবার আমাকে সঙ্গে নিয়ে এক অতিশয় ধনাঢ্য চাষির বাড়িতেও গিয়েছিলেন।

একর প্রতি ফসল উৎপাদনের সারা বিশ্বে আয়ওয়ার স্থান প্রথম। ষাটের দশকে আমেরিকা সফরে এসে সোভিয়েত রাশিয়ার প্রধানমন্ত্রী ক্রুশ্চেভ আয়ওয়ার এক গমের খেতে দাঁড়িয়ে স্বীকার করেছিলেন সে কথা। সেই সময়ে আমেরিকান গম সম্পর্কে অনেক বিচিত্র তথ্যও জানা যেত। গমের উৎপাদন অনেক বেশি হয়ে গেলে বিশ্বের বাজারে দাম পড়ে যাবে। আমেরিকানদের প্রধান ধর্মই হল ব্যবসায়-চিন্তা। এক বছর গমের দাম পড়ে গেলে পরের বছর মূল্যবৃদ্ধি সহজ নয়। সুতরাং অত্যধিক উৎপাদন হলেও তার সবটা বাজারে ছাড়া হবে না, জাহাজের পর জাহাজ ভর্তি করে প্রচুর গমের বস্তা ডুবিয়ে দেওয়া হত সমুদ্রে। পৃথিবীর অনেক দেশের মানুষ অনাহারে বা অর্ধভুক্ত অবস্থায় থাকে, অথচ এভাবে গম নষ্ট করা হয়? পৃথিবীর সব মানুষকে খাওয়াবার দায়িত্ব আমেরিকানরা নেবে কেন? কিছু কিছু দান-খয়রাত করা হয় অবশ্যই, দুর্ভিক্ষপীড়িত দেশে আমেরিকান সরকার খাদ্য পাঠায়, তার একটা নির্দিষ্ট পরিমাণ আছে, এবং ঢাক ঢোল পিটিয়ে তার প্রচারও হয় অনেক। বাজার চাঙ্গা রাখার জন্য মানুষের ক্ষুধাও জাগিয়ে রাখা দরকার। কয়েক বছর পর আমেরিকান সরকার একটা নতুন বুদ্ধি বার করল। জাহাজ ভর্তি করে নিয়ে গিয়ে সমুদ্রে গম ঢালারও বেশ খরচ আছে। তা ছাড়া এর প্রচারের দিকটাও খারাপ, গরিব দেশগুলি আরও আমেরিকান-বিদ্বেষী হয়ে উঠবে। তাই আমেরিকান সরকার প্রতি বছর কিছু কিছু চাষির কাছে আবেদন জানাতে লাগল, তোমাদের এ বছর আর চাষই করতে হবে না। জমি ফেলে রাখো। গত বছর এই জমি থেকে তোমাদের যা আয় হয়েছিল, সেই টাকা সরকার থেকে দিয়ে দেওয়া হবে। চাষিরা তো তাতে রাজি হবেই, বিনাশ্রমেও সমান উপার্জন। অর্থাৎ প্রতি বছর সারা দেশে কতখানি উৎপাদন হবে, যা দিয়ে ব্যবসা-বাণিজ্য ও সীমিত দান-খয়রাত সচল রাখা যায়, তাও পূর্ব কল্পিত ও নির্দিষ্ট।

Scanned with CamScanner

(৯)

পাদ্রী পাপীদের স্বীকারোক্তি গ্রহণ করছেন। স্বীকারোক্তি করার জন্য পাপীরা লাইন দিয়ে দাঁড়িয়ে। পাদ্রীর কাজটাও সোজা। পাপীর মুখ তাঁকে দেখতে হয় না। পর্দার ওপাশ থেকে শুধু পাপীর কণ্ঠস্বর শোনা যায়। ফাদারের কাজ হল ঈশ্বরের নামে পাপীকে ক্ষমা করে দেওয়া। পাদ্রী একের পর এক পাপীকে ক্ষমা করে যাচ্ছেন। তার মধ্যেই একজনের স্বীকারোক্তি শুনতে শুনতে পাদ্রী হঠাৎ চেঁচিয়ে উঠলেন, ইউ ডিড হোয়াট? সেই চিৎকার শুনে লাইন দিয়ে দাঁড়ানো অন্য পাপীরা দুদ্দাড় করে দৌড়ে পালিয়ে গেল। তাদের ভয়, না জানি তাদের পাপও কত ভয়ঙ্কর যা শুনে পাদ্রীও ভিরমি খায়।

মানুষের সব পাপকে একমাত্র ভগবানই বুঝি ক্ষমা করতে পারেন। তাও ভগবান বলে যদি সত্যিই কেউ থেকে থাকে। ভগবান থাক বা না থাক সব মানুষই একজন ক্ষমাশীলকেই খুঁজে বেড়ায়। পাঁচ বছরের শিশুকে ধর্ষণ করে যে মেরে ফেলেছে তাকে কোন মানুষ ক্ষমা করতে পারে? সেই নরকগামী লোকটা হয়তো একদিন অন্তর্দহনে এক শ্বেতশুভ্র সর্বপাপহারী ক্ষমাশীলকেই খোঁজে। পাক বা না পাক, খোঁজে। পুণ্যবানদের বরং ভগবানকে তেমন প্রয়োজন নেই, পাপীরই প্রয়োজন বেশি।

যে আমারে দেখিবারে পায় অসীম ক্ষমায়, ভালমন্দ মিলায়ে সকলি। এই ভালমন্দ মিলিয়ে আখাম্বা লোকটাকে পক্ষপাতশূন্য চোখে কে দেখতে পারে? ভগবান? ভগবান তা হলে কি ইঁট, কাঠ, পাথরের মতোই অনুভূতিহীন কেউ? তা হলে তাকে দিয়ে কী লাভ মানুষের?

ভালবাসা না পেলেও চলে যায়, কিন্তু ক্ষমা না পেলে কি মানুষের চলে? এই মধ্যবয়সে আজ সেও এক ক্ষমাশীলকে খুঁজতে শুরু করেছে বুঝি।

সামনেই রণাঙ্গন। এবং যুদ্ধকে সে ভীষণ ভয় পায়। বরাবরই পেত। কোনও যুদ্ধেই আজ অবধি তার জয় হয়নি। লেখাপড়া বা চাকরি কোনওদিনই তার যুদ্ধ ছিল না। মাথা পরিষ্কার ছিল, স্মৃতি ছিল প্রখর, তাই মশামাছি মারার মতো অনায়াসে সে বেড়াগুলো ডিঙিয়ে গেছে। কিন্তু অন্য দিকে বারবার তাকে যুদ্ধের মুখে ঠেলে দিয়েছে তার জীবন। মোনালিসা, সোহাগ, বুড়ো— তার এইসব আপনজনের সঙ্গে তাকে অবিরল এক অদ্ভুত লড়াই করতে হয়। ধীরে ধীরে সে ওদের ভয় পেতে শুরু করেছে। ধীরে ধীরে মনের ভিতরে সে দূর থেকে দূরে সরে যাচ্ছে। ক্রমে একা হয়ে যাচ্ছে। স্বামী হিসেবে, বাবা হিসেবে কতভাবে যে হেরে যাচ্ছে সে তা ভাবতেও ইচ্ছে হয় না।

কত সামান্য ব্যাপার। আজ তার কলকাতা যেতে ইচ্ছে হচ্ছে না। মোনা আজই যেতে চায়। এই সামান্য সমস্যা বেলা বাড়ার সঙ্গে সঙ্গে যেন ক্রমশই গুরুভার হয়ে উঠতে লাগল। মোনাকে ব্যাপারটা বুঝিয়ে বলার সাহসটা পর্যন্ত পাচ্ছে না সে! ভয় হচ্ছে, বলতে গেলেই মোনা বিস্ফোরিত হবে। প্রচণ্ড রেগে যাবে। কিংবা হয়তো ঠাণ্ডা চোখে এমনভাবে তাকাবে যে নিজেকে বে-আব্রু এক আহাম্মক বলে মনে হবে তার।

এইসব দুঃখের মূলে আজও পারুল। পারুলই। প্রজাপতির মতোই ছিল পারুল। নিষ্ঠুর, লোভী অমল একদিন সেই প্রজাপতির দুটি ডানা ছিঁড়ে দিয়েছিল। তখন প্রজাপতির শরীর থেকে জন্ম নিল বিষধর সাপ। একটি প্রত্যাখ্যানের ছোবলে মেরে ফেলল তাকে। ক্ষমা করল না। কিছুতেই আর নিজেকে বাঁচিয়ে তুলতে পারল না অমল। নিজের শরীরকে বহন করা যেন মৃতদেহ বহন করে যাওয়ার মতোই একটি একঘেয়ে কাজ। সামান্য একটু ক্ষমার দরকার ছিল তার। পাওয়া গেল না।

তুমি এখনও বসে আছ যে! গোছগাছ করবে না?

মানুষ যখন রেগে যায় তখন তার চেহারাটা যেন হয়ে ওঠে ক্ষুরধার। এখন যেমন, মোনার ফর্সা রং থেকে যেন হল্‌কা বেরিয়ে আসছে। তার উত্তাপ দূর থেকেও টের পাচ্ছে অমল। দুটো চোখ যেন চাবুকের মতো শিস টেনে ছুঁয়ে যাচ্ছে তাকে। তীক্ষ্ণ নাকটা যেন বল্লমের মতো উদ্যত। আর সমস্ত শরীর যেন ঝংকার তোলার জন্য সরোদের তারের মতো টানটান।

ভয় আর একটু মুগ্ধতা নিয়ে চেয়ে থাকে অমল। এই তো তার রণাঙ্গন। ধর্মক্ষেত্রে কুরুক্ষেত্রে সমাগত যুযুৎসু। তার স্ত্রী। কিন্তু সে অর্জুনের মতোই যুদ্ধবিমুখ। তার জয়স্পৃহা নেই। ক্ষাত্রতেজ নেই। বীরত্ব নেই। দেয়ালে পিঠ দিয়ে দাঁড়ানো সে এক হেরো মানুষ।

খুব বিনয়ের সঙ্গে সে বলে, গোছানোর তো কিছু নেই! একটা মাত্র অ্যাটাচি কেস।

তা হলে দেরি না করে তৈরি হয়ে নাও। দুপুরের আগেই বেরিয়ে পড়তে হবে!

যুদ্ধ না করেই সে বশ্যতা স্বীকার করে নেয়, হ্যাঁ, নিশ্চয়ই। দুপুরের এখনও দেরি আছে।

তোমার মেয়ে কিন্তু গোঁজ হয়ে বসে আছে! উঠছেও না, গোছগাছও করছে না। দয়া করে মেয়েকে একটু শাসন করো। নইলে—

নইলে কী সেটা ভাবতেও ভয় করে অমলের। কিছু না ভেবেই সে শুধু আত্মরক্ষার জন্য বলে, হ্যাঁ, হ্যাঁ, ঠিকই তো। ওর কি যাওয়ার ইচ্ছে নেই?

না, ইচ্ছে নেই। এই ধ্যাধধেড়ে গোবিন্দপুরে কী মধু পেয়েছে কে জানে। বেশি জেদ করলে কিন্তু আমি চুলের মুঠি ধরে নিয়ে যাব।

শঙ্কিত অমল বলে, থাক, থাক আমি দেখছি।

কিন্তু অমল জানে তার দেখার কিছু নেই। দুই জনের মাঝখানে তার ভূমিকা রেফারিরও নয়। কাউকেই সে কিছু বোঝাতে পারে না। তবু সে উঠল। উঠতে উঠতে মিনমিন করে বলল, কী যেন একটা বলছিল তখন।

কী বলছিল?

বোধহয় শরীর খারাপের কথা।

Scanned with CamScanner

(৫)

সরোজ বক্সী ঢোঁক গিললেন, এই রে, জানি না তো। সান্যাল তো বাৎসলা হতে পারে।

যামিনী ভট্টাচার্য আবার বিরক্ত হলেন, ওভাবে আন্দাজে হয় না সরোজ। উনি কোন তিথিতে মারা গেছেন এসব জানা আছে?

সরোজ বক্সী আবার মাথা নাড়লেন।

যামিনী ভট্টাচার্য আর কিছু জিজ্ঞেস করলেন না। বিট্টুকে খুব নরম গলায় বললেন, আমি যা বলছি আমার সঙ্গে সঙ্গে বলো বাবা। বলো, বিষ্ণুরোঁ...

অনেকক্ষণ থেকে কান্নাটা ভেতরে চেপে রাখতে পেরেছিল বিট্টু। এবার হাঁড়িটা বুকে জড়িয়ে হাউহাউ করে কেঁদে উঠল, মাম্মি!

যামিনী ভট্টাচার্য চুপ করে গেলেন। সরোজ বক্সী বিট্টুকে কিছু সান্ত্বনা দিতে যাচ্ছিলেন। যামিনী ভট্টাচার্য বারণ করলেন। আর মন্ত্র না পড়ে বিট্টুকে বললেন, এবার হাঁড়িটা ভাসিয়ে দাও।

বিট্টু হাঁড়িটা ভাসিয়ে দিল। একটুখানি ভেসে গিয়েই হাঁড়িটা জলের মধ্যে ডুবে গেল।

সরোজ বক্সী চোখ বন্ধ করলেন। তারপর গঙ্গার জল ছেটাতে লাগলেন বিট্টুর আর নিজের মাথায়। যামিনী ভট্টাচার্য সরোজ বক্সীর কানের কাছে করুণ গলায় বললেন, আমি চললাম সরোজ। এ কাজ আর কোনওদিন করতে বোলো না।

সিঁড়ি দিয়ে উঠতে উঠতে বিট্টু দেখল ছড়িয়ে ছিটিয়ে কয়েকজন বসে আছে ঘাটে। সরোজ বক্সীকে বলল, কাকা, একটু বসব এখানে?

—বসবে? ঠিক আছে বসো।

বিট্টুর পাশে এসে বসলেন সরোজ বক্সী। বিট্টু জিজ্ঞেস করল, কাকা এখন জোয়ার না ভাটা?

—ভাটা। যখন হাওড়ার ব্রিজের দিকে জল বয়, তখন ভাটা। জল সমুদ্রের দিকে চলে যায়। আর সমুদ্রের থেকে যখন জল ঢোকে তখন জোয়ার।

—তার মানে মাম্মির ছাইটা সমুদ্রের দিকে চলে গেল?

সরোজ বক্সী চুপ করে থাকলেন। কিছুক্ষণ পর উঠে দাঁড়িয়ে বললেন, চলো। এবার তোমার পোশাকটা পাল্টাতে হবে। তারপর বাড়ি ফিরতে হবে। রাত হয়ে যাচ্ছে। স্যার চিন্তা করবেন।

—আর একটু এখানে বসে থাকি না সরোজকাকা... বাড়ি যেতে ইচ্ছে করছে না।

সরোজ বক্সী আবার বিট্টুর পাশে এসে বসলেন। বললেন, তাই বললে হয় বিট্টুবাবা? জানি তোমার কষ্ট হচ্ছে ম্যাডামের জন্য। তবু তো যেতেই হবে। আমার মা যখন চলে গিয়েছিলেন, তখন আমি অনেক ছোট। তোমার থেকেও ছোট। সবাইকেই একদিন এই কষ্টটা পেতে হয়...

—কাকা মাম্মি কেন সুইসাইড করল?

—সেটাই তো কেউ বুঝতে পারছে না বিট্টুবাবা। সুইসাইড করাটাও একটা অসুখ, মনের অসুখ। না হলে ম্যাডামের মতো একজন যার কোনও দুঃখ ছিল না...

বিট্টুর ভেতরটা মুচড়ে উঠল, মায়ের কোনও দুঃখ ছিল না, বাবার সঙ্গে সম্পর্কটা... সেটাই তো... ঝগড়া, অশান্তি, নিজেদের মধ্যে কথা বন্ধ, শোওয়ার ঘর ভাগ হয়ে যাওয়া, বিট্টুকে হোস্টেলে পাঠিয়ে দেওয়া। এগারো বছর বয়স হলেও বয়সের তুলনায় অনেক বেশি বোঝে বিট্টু।

—চলো এবার আমরা উঠি।

এবার আর বিট্টু আপত্তি করল না। উঠে এল। গাড়িটা একদম অন্ধকার অন্ধকার জায়গায় দাঁড় করানো। বিট্টুদের আসতে দেখে সৌমেন সরকার একটা প্যাকেট নিয়ে এগিয়ে এল। সরোজ বক্সী প্যাকেটটার ভেতর থেকে দুটো সাদা কাপড় বের করে বললেন, তোমায় এবার এটা পরে নিতে হবে বিট্টুবাবা।

—এটা কী?

—কাছা। মা-বাবা চলে গেলে দশ দিন এটা পরে থাকতে হয়। কম্বলের আসনে বসতে হয়।

—এখন পরতে হবে?

—হ্যাঁ, এখনই।

—এইখানে?

—হ্যাঁ, সবাই এখানেই পরে। এখানটা অন্ধকার আছে, গাড়িটাও আড়াল আছে। আমরা ওদিকে দাঁড়াচ্ছি, তুমি পরে নাও। কোমরে জড়িয়ে নাও। তারপর আমি ঠিক করে দিচ্ছি।

এবার বেঁকে বসল বিট্টু। রাস্তায় দাঁড়িয়ে কিছুতেই কাছা পরবে না। প্রমাদ গুনলেন সরোজ বক্সী। দয়াল সান্যালের কড়া নির্দেশ দেওয়া আছে, শোকপালনের কোনও ত্রুটি যেন না হয়। কীসের পর কী করতে হবে, সব নিখুঁতভাবে বলে রেখেছেন। অনেক চিন্তাভাবনা করে সরোজ বক্সী বললেন, ঠিক আছে, কাছেই আমার বাড়ি। বাড়িতে চলো। ওখানে বাথরুমে পরে নেবে।

গঙ্গার ধার থেকে গাড়িটা একটা সরু রাস্তা ধরে চিৎপুর রোডে ট্রাম লাইনের ওপর এসে পড়ল। সেই রাস্তা ধরে কিছুটা এগিয়ে একটা জায়গায় দাঁড়াতে বললেন সরোজ বক্সী। সৌমেন সরকার ড্রাইভারের সঙ্গে গাড়িতেই বসে থাকল। সরোজ বক্সী বিট্টুকে নিয়ে একটা কাঁসার দোকানের পাশ দিয়ে একটা গলি ধরলেন। কয়েকটা বাড়ি এগোতেই একটা বড় বাড়ি এল। দরজা পেরিয়ে বিশাল খোলা একটা উঠোন। উঠোনটাকে ঘিরে চারদিকে তিনতলা বাড়িটা উঠেছে। প্রত্যেক তলার সামনে লম্বা টানা বারান্দা। উঠোন ছাড়িয়ে ওপরে ওঠার জন্য সরু একটা অন্ধকার সিঁড়ি ধরলেন সরোজ বক্সী। তারপর টানা বারান্দাটার মাঝামাঝি এসে একটা দরজায় কড়া নাড়লেন।

কিছুক্ষণের মধ্যেই দরজাটা খুলল অতসী। পিছনে একটা ফ্রক পরা মেয়ে। সরোজ বক্সী শশব্যস্ত হয়ে গলাটা খাদে নামিয়ে বললেন, বিট্টুবাবা... ছোটবাবু।

বিট্টুকে দেখেই অতসীর মুখচোখ পাল্টে গেল। ম্যাডাম আত্মহত্যা করেছেন এটা এখনও যেন বিশ্বাস করতে পারেনি। সেই সন্ধেটার কথা সেদিন থেকে বারবার মনে হচ্ছে। মালকিন হয়েও কত অনায়াসে কত গল্প করেছিলেন। বীথিকে দিয়েছিলেন কানের দুল। স্বামী ম্যাডামের ছেলেকে আনতে গেছে। অতসীরও ইচ্ছে ছিল কপালপোড়া ছেলেটাকে একবার দেখবার। কিন্তু আজই সন্ধেতে বিট্টু বাড়িতে আসবে ভাবতেই পারেনি। তাড়াতাড়ি দরজার মুখটা থেকে সরে দাঁড়িয়ে অতসী বলল, এসো, এসো বাবা।

(৬)

পাশে রাখা ছোট টুলে অনিমেষ বসল। তপাদারের স্ত্রী আর ছেলে বিষণ্ণ মুখে ওকে ঘিরে দাঁড়িয়েছিল। কিশোর বয়েসি ছেলেটির তাজা মুখে দুশ্চিন্তার ভাঁজগুলো বেমানান হয়ে ফুটে আছে। কতই বা বয়েস হবে? বুলুর থেকে তিন-চার বছরের বড়। বুলুর এখনও বোঝার বয়স হয়নি, সে তার নিজস্ব জগৎ নিয়েই মেতে আছে। এটা মনে করে অনিমেষ একটু স্বস্তি বোধ করল।

এখন কেমন? অনিমেষ সামনের দিকে ঝুঁকে বিছানার প্রান্তে দু'হাত রেখে যেন তপাদারকে প্রশ্নটা শোনাতে চাইল।

তার মুখ জানালার দিকে ফেরানো। অনিমেষের গলার আওয়াজে তার কোনও ভাবান্তর হয়নি।

একই রকম। নার্সিংহোম থেকে ফেরার পর আজ অবধি কোনও শব্দ উচ্চারণ করেনি ও।

অনিমেষ আবার দেখল তপাদারের ছেলেকে। চিন্তাক্লিষ্ট ভঙ্গিমায় দাঁড়িয়ে বাবার পাশে। ধীর গতিতে সে তপাদারের চুলের মধ্যে আঙুল চালিয়ে যাচ্ছে, অবশ্য তপাদারের মুখে আরামের কোনও রেখা ফুটে ওঠেনি।

বুলু এখনও অবুঝ। গতকাল রাতে সে অনিমেষ আর রীনাকে ফের মনে করিয়ে দিয়েছে তার জন্মদিনের তারিখ!

দু'বছর আগে বুলুর দশ বছরের জন্মদিনে জমকালো পার্টি দিয়েছিল অনিমেষ। ব্যাপারটা বুলুর খুব পছন্দ হয়। বুলুর ইচ্ছা প্রতিবারেই এরকম হোক।

কিছুক্ষণ পর দু'জন মধ্যবয়স্ক নারী একজন পুরুষ সঙ্গী নিয়ে ঘরে ঢুকলে অনিমেষ উঠে দাঁড়াল।

ফেরার পথে তার চিন্তা বুলুকে নিয়ে ঘুরপাক খাচ্ছিল। আগামী সেশনেই বুলুকে ওই স্কুল থেকে সরিয়ে নিতে হবে।

ভেবেছিলাম দু'বছর পর ছেলেটাকে সাউথে ম্যানেজমেন্ট পড়তে পাঠাব, তা বোধহয় আর হল না। তপাদারের স্ত্রী খুব মৃদু স্বরে যেন ছেলে শুনতে না পায় এমনভাবে বলছিলেন। ওকে নিয়ে চিন্তা নেই, অনিমেষ ভাবল। বুঝদার হয়ে ওঠার বয়সে তপাদারের ছেলে পৌঁছে গেছে। হয়তো নিজের ভাগ্যকে দোষ দেবে। কিন্তু বুলুর প্রতিক্রিয়া কী হবে, তা নিয়ে অনিমেষের সংশয় আছে। রেগে যাবে, কিংবা জেদ ধরে থাকবে। বিস্ময়মাখা আহত বুলুর মুখটা সে চোখের সামনে ভাসিয়ে তোলার চেষ্টা করছিল।

কেমন আছেন ভদ্রলোক?

একই রকম। অনিমেষ হাতের গ্লাসে হালকা চুমুক লাগায়।

তুমি কিন্তু রোজ শুরু করলে। রীনার গলায় মৃদু অসন্তোষ।

হুঁ।

রবি বিশ্বাস হতে চাও নাকি?

জবাব না দিয়ে আর একটি নিঃশব্দ চুমুকে গ্লাস খালি করে টেবিলে নামিয়ে রাখল অনিমেষ।

সেদিন রাতে জ্যোৎস্নাপ্লাবিত ব্যালকনিতে বসে তারা সিদ্ধান্ত নেয় বুলুর জন্মদিন জাঁকালোভাবে হবে, তারপর...।

। দুই ।

পার্টি শেষ হয়েছে অনেকক্ষণ, গোটা ফ্ল্যাট লণ্ডভণ্ড করে গেছে আগত অতিথি আর বুলুর স্কুলের বন্ধুরা। এখানে-ওখানে খাবার টুকরো, উপহারের প্যাকেট, রঙিন কাগজ, কাচের গ্লাস, অ্যাসট্রে ছড়িয়ে-ছিটিয়ে একাকার। সবচেয়ে বেশি অগোছালো বুলুর ঘর। ওর বন্ধুরা সেখানেই বেশি সময় কাটিয়েছে।

নিজের ঘরে ছোট খাটের ওপর একগাদা উপহার আঁকড়ে ধরে বুলু এখন গভীর ঘুমে আচ্ছন্ন। সারা সন্ধে দুরন্তপনার পর ও আর বেশিক্ষণ নিজেকে জাগিয়ে রাখতে পারেনি।

ঘুমোনোর আগে উপহারগুলো নিয়ে নাড়াচাড়া করছিল বোঝা যায়। সবাই চলে যাবার পর রীনা একপ্রস্ত বুলুর ঘর গুছিয়ে দিয়েছিল। ঘুমিয়ে পড়ার আগে ফের সবচেয়ে পছন্দের গিফট্ ক'খানা সে টেনে নামিয়েছে।

একঝলক দেখলেই বোঝা যায় খেলনাসহ অত্যন্ত দামি সব জিনিস উপহার দিয়ে গেছে অতিথিরা।

যেমনভাবে বুলু ঘুমিয়েছিল তাকে ঠিক তেমনভাবে রেখেই অনিমেষ ঘর থেকে বেরিয়ে আসে।

বুলু আর কখনও জাগবে না। এই অভিজাত বৃত্ত থেকে ঘাড় ধরে তাদের বের করে দেওয়া হয়েছে। জ্ঞান হওয়া অবধি সে এই পরিমণ্ডল দেখে আসছে। এর বাইরের জগৎ সম্পর্কে তার কোনও ধারণা তৈরি হয়নি।

অনিমেষও কি চেয়েছে বুলু কখনও টের পাক? বোধ হয় না। নিজের শুরুর দিনগুলোকে সে সযত্নে সরিয়ে রেখেছিল ছেলের কাছ থেকে। বুকের মধ্যে তীক্ষ্ণ শলাকা বেঁধার যন্ত্রণা অনিমেষ অনুভব করে।

রীনা আজ চেয়ে দেখার মতো সেজেছিল। এমনিতে ওর মধ্যে একটা সহজাত সৌন্দর্য আছে। রীনার চলা, ফেরা, তাকানো সব কিছু থেকে ঠিকরে পড়ে এক ধরনের আলগা প্রশান্তি। নিজেকে কীভাবে ক্যারি করতে হয় সেটা ওর থেকে ভাল কেউ জানে না।

গত দশ বছরে যে-কোনও পার্টিতে অনিমেষের পাশে রীনার উপস্থিতি তাকে অনেক মাইলেজ দিয়েছে। আজ সে স্বভাববিরোধী উগ্র সাজে সেজেছিল। চারমাস ধরে যে-গুমোট ভাবটা ফ্ল্যাটের আনাচে-কানাচে জমে উঠেছিল, রীনা যেন সজোরে টান মেরে সেটা বাইরে ফেলে দিতে চেয়েছে।

রীনার সন্ধেবেলার উচ্ছকিত হাসিগুলো তার মনে পড়ল। দ্রুত পায়ে একটা উজ্জ্বল রঙিন প্রজাপতির মতো সে উড়ে বেড়াচ্ছিল এঘর থেকে সেঘর। আগত অতিথিদের চোখে মুগ্ধতার ছায়া ঝিলিক দিয়ে উঠছিল বারবার।

ঘাড় ঘুরিয়ে সে ঘুমন্ত রীনাকে একবার দেখল। কিছুক্ষণ আগে অনিমেষ যখন বিছানার পাশে দাঁড়িয়েছিল, তখন থেকে শোওয়ার ভঙ্গিমায় কিছুমাত্র বদল হয়নি। ক্লান্ত অবস্থায় গভীর ঘুমে আচ্ছন্ন রীনার কানের পাশ দিয়ে তপ্ত সীসার টুকরো প্রবেশ করার মুহূর্তে বুলুর মতোই সে সামান্য কেঁপে উঠে কুঁকড়ে গেছে কেবল।

অনিমেষ আবার একটা ক্ষোভো ছটফটানি টের পায় নিজের ভেতর।

সে নিজেও কি আজ সারা সন্ধে নিখুঁত অভিনয় করেনি? আয়োজনের বহর এবং তাদের দু'জনের মুড দেখে সরখেলের মতো অফিসের অন্যান্যরাও বিস্মিত হয়েছে। আগামীকাল অফিসে অনিমেষ চৌধুরির বিখ্যাত আত্মবিশ্বাস নিয়ে নিশ্চয় কিছু আলোচনা হবে।

রমেন তপাদার যখন এমডি-র ঘর থেকে বেরোয় তখন সকলের মতো অনিমেষও তাকিয়েছিল তার মুখের দিকে। সবাই যা খুঁজছিল, সে তা দেখতে চেয়েছে।

স্পষ্ট মনে পড়ছে তপাদারের ঠোঁটের কোণে একটা মৃদু হাসি ঝুলছিল। চোখ দুটো ছিল অসম্ভব শান্ত। কোনও চঞ্চলতা প্রকাশ পায়নি সেখানে।

কেউ কি জানত দশ-পা এগিয়ে সে বেয়ারা বিশ্বনাথের বাড়ানো দু'হাতের মধ্যে সঁপে দেবে নিজেকে!

Scanned with CamScanner

(৩)

দুলাল এতক্ষণ পিছনের দিকের বাগানে মাটি কোপাচ্ছিল। তেরো-চোদ্দোর মতো বয়স। খুচখাচ রোজগারের চাপে এখন স্কুলছুট। একটু আগে মেনকা তাকে পান্তাভাত খেতে ডেকে এনেছিল। কোদাল ফেলে হাত ধুতে ধুতে বাপ-মায়ের কথা শুনছিল। একটু ইতস্তত করে সে বলল, সিদ্ধি জ্যাঠার কাজে আমাদের নেমন্তন্ন করবে, বাপ?

নিশ্চই করবে। কিন্তু এটা কথা বলি দুল্যে শোন। নাম ধরে তার সঙ্গে জ্যাঠা বলতেনি বাপ। একে মানী লোক তায় গুরুজন। গুরুজনের নামের পেছে জ্যাঠা জোড়েগে বলা যা আর নাম ধরে ডাকাও তা। শুধু জ্যাঠাবাবু বলতে হয়। হ্যাঁ, যে কথা হচ্ছেলো, বড়বাবু আর মেজবাবুতে বলাবলি হচ্ছেলো খাটেই নাকি ছ'শ লোক গেছেলো। তাহলে দুজেই ধ্যাখ, কাজের দিনে অন্তত পনেরো-ষোলোশো লোক হবেই। আর আমি হলোম গিয়ে সিদ্ধিদার ভাই— আপন লোক। সব কাজে-কম্মে সিদ্ধিদা ডাকতো-হাঁকতো। বড়বাবু-মেজবাবু তো তাই দেখে এসেছে বরাবর। আমাদের নেমন্তন্ন হবেই হবে।

খাওয়া-দাওয়ার তো ভাল জোগাড় হবে, তাই না?

তা হবে বইকি! অ্যাতো বড় ধনী-মানী লোকের ছেরাদ্দ বলে কতা! পাঁচ-সাত গেনা গেরামের লোক খেতে আসবে। তার মানটা তো রাখতে হবে।

মেনকা এতক্ষণে ছেলের পান্তাভাত সানকিতে বেড়ে দিয়েছে, ও বাপ, ও দুল্যে, খেয়ে নে পান্তা।

দুলাল মাটির দাওয়াতেই খেবড়ে বসে। সানকির পান্তা ওলটপালট করে দেখে নেয় আর কিছু আছে কিনা। নাঃ, নেই। শুধু জলপান্তা খেতে খেতে ফের নিমন্ত্রণ খাওয়ার কথা তোলে দুলাল, সে বছর সেই যে সেরান কাকা, ইয়ে মানে ওই নকুলদার বে-এর সময় আমাদের নেমন্তন্ন হল। কত কী ভাল ভাল খেলাম, সব মনেনি। তোর মনে আছে বাপ?

আছে বইকি! যোগেন এবার একটা বিড়ি ধরায়। তারপর গভীর সুখের সে স্মৃতির অতলে ধীরে ডুব দেয়, মাছের মুড়ো দে সোনামুগের কী ঘন ডাল, বোঁটাসুদ্দু বড় বড় বেগুনভাজা, আলু-পটলের তরকারি, তার নাম কী ছেলো! তারপর খেলো রুই, পাকা রুইয়ের কালিয়া।

কালিয়া কী বাপ?

কালিয়া? কালিয়া হল গে...কী জানি বাপ কালিয়া কী, তবে খেতে বড় জম্পেশ হয়েছেলো। আর এরপর ছিল মুরগির মাংস, দু'বার করে দেছেলো! একটু থামে যোগেন। স্বাদটা যথাসম্ভব মস্তিষ্ক থেকে জিভে চালান করার চেষ্টা করে। অন্দরেও থাকে কিছুটা। সরস হতে থাকে জিভ। সু-উ-হ করে লালা টানে, পঞ্চাঠাকুর রাঁধি ছিল, আহা সে কী স্বাদ-গন্ধ ছেড়েছিল মাংসের...!

উঠোনের একধারে মেনকা, কুড়ানো শাক-পাতা নিয়ে বসে, বারান্দার একধারে পান্তার সানকির সামনে দুলাল, অন্যধারে বিড়ির পোড়া টুকরো হাতে যোগেন। তিনজনেই ডুব দেয় দু'বছর আগেকার নিমন্ত্রণ বাড়ির সেই মাংসের স্বাদে-গন্ধে। পরবর্তী পদ চাটনি, দই, মিষ্টির স্মৃতি অনুক্ত থেকে যায় তুচ্ছতায়।

+চার+

যোগেন বাজারের মুরগির দোকান থেকে মুরগির কেটে ফেলা নখযুক্ত টুকরো ঠ্যাং, নাড়িভুঁড়ি মাঝেমধ্যে যখন পারে কিনে নিয়ে আসে। আলু-টালু দিয়ে ঝোল বা চচ্চড়ি মতো হয়। কিন্তু বিয়েবাড়ির রান্না করা মাংসের সেই স্বাদ আর নেওয়া হয়ে ওঠেনি তারপর থেকে। কে-ই বা তাদের নিমন্ত্রণ করবে? তাদের মতো গরিবগুর্বো লোকের বাড়িতে অনুষ্ঠানে লোক খাওয়ানো হয় না। যদিওবা কখনও-সখনও হয়—ডাল, ভাত, রসা মাছের ঝোল আর বড়জোর ডিমের ঝোল।

মেনকা এবার এতক্ষণের স্তব্ধতা সরিয়ে ছেলেকে বলে, ও দুল্যে, বেস্পতি দেঁইড়ে আছে রে বাপ। চাট্টি পান্তা ওরে দিস রে।

দুলাল খাওয়া অসমাপ্ত রেখে উঠে পড়ে। বেস্পতির খাওয়ার জায়গায় পান্তাভাত ঢেলে দেয় সযত্নে। বেস্পতি ওদের পোষা কুকুরী। কোনও এক বৃহস্পতিবারে যোগেনই কোথা থেকে কুড়িয়ে এনেছিল, বারের নামে নাম দিয়েছিল বেস্পতি। গজগজ করেছিল মেনকা, নিজের খাবার জোগাড় হয় না, আবার বাড়তি জন নিয়ে এল। তবু বেস্পতি থেকে গিয়েছিল। পরে নিজের গুণেই মেনকারও ভালবাসা আদায় করে নিয়েছিল সে। বেস্পতির ক'দিন আগে তিনটে বাচ্চা হয়েছে। এখন তার একটু বেশি বেশি খিদে হয়েছে। সবাই এখন নিজের নিজের ভাত বা পান্তা খাওয়া কাটি-ছাঁটি করে বেস্পতিকে খাওয়ায়।

দুলাল তখনও রান্না মাংসের ঘোরের মধ্যে রয়ে গেছে, বেরিয়ে আসতে চাইছে না বা পারছে না। আচ্ছা বাপ, নকুলদার বে-বাড়ির আগে একবার জ্যাঠাবাবুর বাড়ির ছোটবাবুর বে-এর সময় মাংস তো হয়েছেলো, বল?

হ্যাঁ, হ্যাঁ, হয়েছেলো।

সেটা কীসের মাংস ছেলো? মুরগির?

খাসির। খাসির!...

স্বপ্নের জগতের স্বপ্নের মাংস। তা রান্না হলে যে সুগন্ধ ছাড়ে, যে স্বাদ ছড়িয়ে পড়ে জিভ, দাঁত, টাকরা, গলা উপচে সারা শরীরে, সেও সবই স্বপ্ন।

মেনকা এতক্ষণ পরে এবার শ্রোতার ভূমিকা ছেড়ে বেরিয়ে আসে, ওঃ! সে ভারি জম্পেশ সোন্দর স্বাদ হয়েছেলো বটে, সেরোমটা আর... কথাটা শেষ করার আগে সেই দুঃসাহসের স্মৃতিতে ডুবে যায় মেনকা। দ্বিতীয়বার মাংসের বালতি নিয়ে যখন পরিবেশনের লোক এসেছিল, সমস্ত লজ্জা-শরম-ভয় ত্যাগ করে বেপরোয়াভাবে ঘোমটাসুদ্ধ মাথা নেড়ে সম্মতি দিয়ে ফেলেছিল সে।

আর যোগেন? দ্বিতীয়বারে দেওয়া ভাল পরিমাণের মাংস পাতে নিয়ে তাতে হাত ছুঁয়ে রেখে খানিক বসেছিল সে। তখনই সবটা খেয়ে ফেলতে তার ইচ্ছে করছিল না। খেলেই তো শেষ হয়ে যাবে এই সুবাস-সুস্বাদ, যা এখন চোখ দিয়ে নাক দিয়ে সে গোগ্রাসে শুষে নিতে পারছে বাড়তিভাবে। তারপর ধীরে ধীরে প্রতিটি হাড়ের সূক্ষ্মতম খাঁজ থেকে মাংস-মজ্জা-ঝোলের সামান্যতম বিন্দু পর্যন্ত সমগ্র আত্মা, সমগ্র চৈতন্য দিয়ে লেহন শোষণ করে নিয়েছিল যোগেন।

এ স্বপ্ন কখনও বাড়িতে আসে না, আনা যায় না। এ থাকে অনেক দূরে, শুধু সিদ্ধিবাবুদের মতো লোকেদের বাড়ির অনুষ্ঠানে, নিমন্ত্রণে ভেসে বেড়ায়। কবে কখন কত বছর পরে তা ধরা দেবে তা কেউ জানে না। যেমন এবার আর কয়েকদিন পরেই সেই স্বপ্ন খুব সম্ভবত ধরা দিতে চলেছে বহু বছর পরে। দু'দিন আগেও তার ছিটেফোঁটা হদিস পায়নি যোগেন।

Scanned with CamScanner

(৫)

পূর্বেই উল্লেখ করেছি আমার স্বর্গত পিতা ধূর্জটিপ্রসাদ মুখোপাধ্যায় আমার জন্মের অনেক আগেই লখনউ-নিবাসী হয়ে সেখানকার ইউনিভার্সিটিতে অধ্যাপনা শুরু করেন। কলকাতায় থাকাকালীন তিনি প্রসিদ্ধ ধ্রুপদীয়া রাধিকা গোস্বামী ও মহিম মুখুয্যের কাছে তালিম নেন। ওঁর যৌবনের গানবাজনার সঙ্গীসাথীদের মধ্যে অমিয়নাথ সান্যালের নাম আগে-ভাগে করতে হয়। উনি দুলীচাঁদবাবু ও শ্যামলাল ক্ষেত্রীর বাড়িতে মৌজুদ্দিনের ঘনিষ্ঠ সংসর্গ লাভ করেছিলেন, আর খেয়ালে বদল খাঁ সাহেবের। এর ওপর এস্‌রাজ এত মিষ্টি বাজাতেন যে, ওস্তাদ হাফিজ আলি খাঁ বলেছিলেন, "পাঁচুবাবু, আপনার হাতখানা আমাকে কিছুদিনের জন্য ধার দেবেন?" অন্য আর একজন আচার্য গিরিজাশঙ্কর চক্রবর্তী যিনি ১৯১০/১২ সাল অবধি রাধিকা গোস্বামীর কাছে ধ্রুপদ শিখে পরে খেয়ালের জন্য বদল খাঁ ও রামপুরের এনায়েৎ হুসেন খাঁর কাছে যান। ঠুংরী শেখেন কলকাতায় গোয়ালিয়রের রাজবাড়ির বিখ্যাত হার্মোনিয়ম-এর বাদক ভইয়াসাহেব গণপৎ রাও-এর কাছে ও স্বয়ং মৌজুদ্দিনের কাছে। এতদ সত্ত্বেও আমার বাবার এক নম্বর 'লয়াল্‌টি' ছিল ধ্রুপদের প্রতি। আর সে-যুগে ভাল ধ্রুপদ গায়কদের অভাব ছিল না, খেয়াল ঠুংরির কদরদানরাও প্রচুর।

রাজা শৌরীন্দ্রমোহনের উদ্যোগে সংগীত সম্পর্কে একাধিক পুস্তক ও পত্রিকা প্রকাশিত হত। শহরের নানা পল্লীতে সংগীতসমাজ গড়ে উঠেছিল, তার মধ্যে সবচেয়ে নাম-করা ছিল কর্নওয়ালিস স্ট্রিটের সংগীত সংঘ, যার সভ্যরা ছিলেন নাটোরের মহারাজা, রবীন্দ্রনাথ, আশু চৌধুরী, মন্মথ মিত্র ও আরও অনেকে। জোড়াসাঁকোর ঠাকুরবাড়ি যদু ভট্ট ও পরে রাধিকাপ্রসাদের পৃষ্ঠপোষক ছিলেন। অঘোরবাবু উৎকৃষ্ট ধ্রুপদী এবং বিশ্বনাথ রাও ভাল ধামারী ছিলেন; লালচাঁদ বড়াল এঁর কাছে শেখেন। অঘোরবাবু, অনন্তনারায়ণ ও গোপেশ্বরবাবুর গোষ্ঠীর অনেকেই কলকাতায় ঘন ঘন আসতেন। এ-শহরে তখন ভারতবর্ষের বড় বড় সব ওস্তাদদেরই যাতায়াত ছিল। সরোদ বাজিয়ে ওস্তাদ কওকব্‌ খাঁ ও কেরামতুল্লা খাঁ কলকাতাবাসী হয়ে গিয়েছিলেন।

8 (क)

वे दिन! मक्का की फसल पर शोध के सिलसिले में तब हैदराबाद और गोधरा भी जाना पड़ता था। भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान यानी पूसा इंस्टीट्यूट, दिल्ली में खरीफ के मौसम की मक्का का काम पूरा होता तो प्रयोगों के लिए रबी की फसल बोने निकल पड़ते। तब मन में शोध के क्षेत्र में कुछ कर दिखाने का गजब का जोश था। सूरज निकलने से पहले मक्का के खेतों में पहुंच जाता और सूरज ढलने के बाद लौटता। मक्का अनुसंधान योजना के प्रमुख डॉ. जोगेंदर सिंह का कहना था कि मक्का के पास कोई घड़ी नहीं है। वह सुबह-सुबह जाग जाती है और रात घिरने पर हीं सोती है। इसलिए हमारा ऑफिस टाइम भी यही है।

हां तो खरीफ का मौसम विदा होता और हम टूर पर निकल पड़ते। आज याद आते हैं, आधी सदी पूर्व के वे दिन!

अंहा, उन दिनों का वह हैदराबाद! अंबरपेट फार्म से शाम को थका-मांदा होटल में लौटता। नहा-धोकर एबिड रोड की ओर निकल जाता। लौटते हुए कई बार ताजमहल होटल में खाना खा लेता। आठ आने में एक बार का भरपेट भोजन, संगमरमर की मेजों पर केले के पत्ते में। भात, रसम, सांभर, सब्जी, नारियल तेल, चटनी, सलाद और अंत में एक गिलास मजीगे (मट्ठा)! एक रुपए की स्पेशल थाली मिलती थी। कई बार अपने होटल के कमरे में ही हैदराबादी बिरयानी मंगा कर खा लेता।

दिल्ली में जैसे रेहड़ी पर मूंगफली, चना आदि बिकता था, हैदराबाद में रेहड़ी पर जगह-जगह सूखे मेवे के ढेर लगे रहते- काजू, बादाम, पिस्ता, किशमिश, छुहारे... और फुटपाथों पर हरे-काले अंगूरों के ढेर। एक बार कुर्ग, कर्नाटक के रहने वाले साथी उल्हास और मैं काफी अंगूर खरीद लाए। कमरे में आकर दोनों ने जम कर अंगूर खाए और सो गए। पंखे की हवा में रात में हमारा पेट बुरी तरह फूल गया था। पता ही नहीं था कि खाली पेट इतने अंगूर नहीं खाने चाहिए।

8 (ख)

रवींद्रनाथ ठाकुर ने चित्रकला संबंधी जितनी भी बातें कहीं या लिखीं हैं, सभी हम भारतीयों के लिए सही मायनों में मार्गदर्शन कर सकती हैं, क्योंकि चित्रकला के संबंध में आम भारतीयों और बुद्धिजीवियों की अवधारणाओं की कमियों से रवींद्रनाथ ठाकुर पूरी तरह से अवगत थे। बीसवीं सदी के शुरुआती वर्षों में उन्होंने एक ओर इंडियन सोसाइटी ऑफ ओरिएंटल आर्ट्स (1907) में बनते देखा था (पर इसमे शामिल नहीं हुए थे) और दूसरी ओर उन्होंने उसी दौर में पश्चिम की कला को आधुनिकता और तार्किकता के साथ नई दिशाओं की और बढ़ते भी देखा था। वे अपने समकालीन चित्रकारों और बुद्धिजीवियों की, अजंता से लेकर मुगल कला में भारतीय कला की जड़ों को खोजने

Scanned with CamScanner

और हिंदूवादी चित्रकला को 'भारतीय' कला के रूप में स्थापित करने की निरर्थकता को समझ सके थे। सिस्टर निवेदिता का भारतीय नारियों का सती बनने में निहित महानता का सिद्धांत हो या चतुर्भुजी भगवा वस्त्रों में भारतमाता की कल्पना, उस समय के समूचे बंगाल स्कूल के चित्रकारों को सम्मोहित कर डाला था। आनंद कुमारस्वामी शिव, ब्रह्माण्ड और भारतीयता की तमाम दार्शनिक व्याख्याएं स्थापित कर रहे थे। इन प्रयासों में सत्ता की भूमिका को हम केवल इसी बात से समझ सकते हैं कि सन 1907 में अंगरेजों ने इंडियन सोसाइटी ऑफ ओरिएंटल आर्ट्स को सालाना दस हजार रुपए का सहयोग देने का प्रावधान किया था।

रवींद्रनाथ ठाकुर ने बार-बार अपने पत्रों, व्याख्यानों और लेखों के जरिए चित्रकला से संबंधित अपनी बातों को सहज-सरल ढंग से लोगों तक पहुंचाने की कोशिश करते रहे। भारतीय चित्रकला के इतिहास में यह पहली बार हुआ था कि कोई चित्रकला चिंतक, चित्रकला के बारे में अपनी ऐसी स्थापनाओं से सैकड़ों वर्षों से चली आ रही चित्रकला संबंधी मान्य अवधारणा और चित्रकला के 'इस्तेमाल' की परंपरा के मूल पर आघात कर रहा था। रवींद्रनाथ ठाकुर ने अपने जीवन के अंतिम दस वर्षों (1931-41) में ही सक्रिय चित्र रचना की और हजारों चित्र बनाए, पर यह तथ्य हमें चकित करता है कि उन्होंने अपने एक भी चित्र में किसी राजा-रानी या देवी-देवता को चित्रित नहीं किया। 'संदर्भ' को सूत्र के रूप में देने की पाश्चात्य परंपरा के विपरीत जाकर उन्होंने अपने चित्रों को 'शीर्षक' से भी मुक्त रखा। राजसत्ता, धर्मसत्ता और पुरुष सत्ता के चंगुल से चित्रकला को मुक्त कराने के उनके प्रयास को उनकी कला के जरिए ही बेहतर समझा जा सकता है। रवींद्रनाथ ठाकुर की चित्र रचना में सक्रिय होने का समय अमृता शेरगिल (1913-1941) के रचनात्मकता का उत्कर्ष का समय था। और यह भारतीय चित्रकला का एक अद्भुत संयोग था कि सैकड़ों वर्षों की राजसत्ता, धर्मसत्ता और पुरुषसत्ता की गुलाम बनी हुई भारतीय चित्रकला को पहली बार इन दो चित्रकारों के चित्रों में 'मुक्ति' का आस्वाद मिल सका। रवींद्रनाथ की तरह अमृता शेरगिल ने अपने पूर्ववर्ती चित्रकार राजा रवि वर्मा के धार्मिक चित्रों की परंपरा को नकारा तो हेमेन मजूमदार सरीखे नारी देह की उष्ण कोमलता को राजाओं और सामंतों को परोसने की कुत्सित कला से भी अपने को दूर रखा। अमृता शेरगिल ने पुनरुत्थान के नाम पर बंगाल स्कूल की नासमझी से भरे कला उद्देश्यों से असहमति दिखाई। अमृता शेरगिल और रवींद्रनाथ ठाकुर ने ही, सही मायनों में भारतीय चित्रकला में 'नव जागरण' का सूत्रपात किया था और भारतीय चित्रकला इतिहास में यह महत्त्वपूर्ण संशोधन अभी बाकी है।

8 (ग)

साठ-सत्तर-अस्सी के दशक तक किसी गैलरी, कलाकार या किसी कलाप्रेमी की ओर से दी गई पार्टियां बड़ी आत्मीय हुआ करती थीं। जगह छोटी भी हो तो सब अपने लिए कोई न कोई कोना

Scanned with CamScanner

तलाश करके बैठ जाते थे। कभी-कभी तो कुछ लोग किसी मेज, दीवार या कुर्सी के सहारे खड़े-खड़े ही घंटा-आध घंटा बिता देते थे। रात के ग्यारह-बारह भी बज जाते थे। पर, वह दिल्ली मानो कोई और दिल्ली थी। 'पार्टी' के बाद, कोई किसी के दुपहिया स्कूटर में, कोई रात की अंतिम बस में, कोई ऑटो में और कोई तो पैदल ही, अपने घर का रुख करता था। ऐसी 'बैठकों' में, व्यंग्य-विनोद का, हल्के-फुल्के मजाक का, और गंभीर चर्चा और विमर्श का भी 'स्पेस' रहता था। कोई पुराने 'संस्मरण' सुनाता, कोई इसकी खोज-खबर लेता कि आजकल कौन कहां है, क्या कर रहा है, घर-परिवार और मित्रों की भी बातें होतीं।

मुझे याद है, केशवजी के हाथ में हमेशा कोई किताब या पत्रिका होती थी। वे किताबें प्रायः किसी यूरोपीय-अमेरिकी कवि की होतीं, या फिर किसी अन्य विषय की। केशवजी तो पैदल चलने वालों में रहे हैं। इसीलिए शुरू में ही मैंने पैदल चलते वक्त, हाथ में किताब पकड़े हुए, केशवजी की 'छवि' की याद है। दिल्ली में उन दिनों कभी बिल्कुल अचानक कभी संयोग से कभी तय करके, कहीं इकट्ठा हो जाने पर भी हम मिलते थे। गवाह है 1973 की वह तस्वीर जो रिचर्ड बार्थोलोम्यु की खींची हुई है और उनकी खींची तस्वीरों वाली पुस्तक 'अ क्रिटिक्स आई' के पृष्ठ 38 पर है। गैलरी चाणक्य में जीआर संतोष की प्रदर्शनी के अवसर पर, चित्रकार भूषण, जीआर संतोष, केशवजी और मैं कुर्सियों पर हैं, कृष्णन और गैलरी संचालक शामी मेहदीरत्ता फर्श पर बैठे हुए हैं। कनाट प्लेस में केशवजी का निवास स्थान, हम लोगों के लिए हमेशा ईर्ष्या का विषय रहा। केशवजी अपने निवास से, मंडी हाउस तो पैदल आते ही थे, वे आधुनिक कला-संग्रहालय, जयपुर हाउस, और इंडिया इंटरनेशनल सेंटर जैसी जगहों में भी पैदल आते-जाते थे। खासकर तब जब अकेले हों। जब उनकी पत्नी ऊषाजी भी साथ हों तब तो बात अलग होती। केशवजी और ऊषाजी की जोड़ी की भी याद आती है। दोनों शालीन। भद्र। पढ़े-लिखे। सहृदय। बैठकों में मेरी बातचीत ऊषाजी से भी प्रायः होती। वह सबका बहुत ध्यान रखतीं। केशवजी के साथ उन बैठकों की भी याद है, जो रामेश्वर बरूटा के त्रिवेणी कला संगम वाले फ्लैट में होती थीं।

८ (घ)

मैं माहौल को बदलने में लगभग कामयाब हो रहा था कि तभी खादी के धोती-कुर्ते में एक बुजुर्ग आदमी गमछे से पसीना पोंछते हुए ऊपर आए, उनके पीछे कुछ और लड़के थे। बुजुर्ग ने पहला सवाल किया- 'आप कौन हैं साहब?' जवाब लड़कों ने ही दिया- 'स्टेनो हैं रेलवे मजिस्ट्रेट के, जो चेकिंग करवा रहे थे।' बुजुर्ग ने कहा- 'अच्छा तो आप स्टेनो बाबू हैं... मेरी एक बात का जवाब दीजिए! ये जो बिना टिकट की यात्रा है, इसको कौन बढ़ावा देता है?' मेरे जवाब की उन्होंने प्रतीक्षा भी नहीं की और खुद ही जवाब दे दिया- 'यह आपका रेल प्रशासन जिम्मेदार है। आइए इधर...' वे मेरी बांह पकड़ कर एक किनारे ले आए, जिधर केबिन की खुली खिड़कियां थीं- 'वो बंद कमरा

Scanned with CamScanner

देख रहे हैं... यह रेलवे का बुकिंग घर है। देख रहे हैं न खुला है कि बंद है?... यह प्रायः बंद ही रहता है। जब टिकट ही नहीं मिलेगा, तो लोग तो बिना टिकट चलेंगे ही।'

'आप लोग कंप्लेन नहीं करते हैं?' अब मैंने पूछा।

'कौन सुनता है कंप्लेन?' बुजुर्ग की आवाज़ तेज हो गई– 'दो साल से कंप्लेन किया जा रहा है, कोई सुनता है! हमने कितनी ही बार जमानियां के स्टेशन मास्टर से भी कहा कि इस एजेंट को चेंज करवाइए। डीआरएम को भी लिखा कि यहां रेलवे का परमानेंट बुकिंग क्लर्क दीजिए... लेकिन आज तक कोई सुनवाई नहीं हुई।' पीछे से फिर एक आवाज आई– 'आज चक्का जाम हो जाय हो प्रधानजी!'

मुझे लगा कि फिलहाल का संकट टल सकता है। मैं बुजुर्ग का स्वभाव समझ गया था। मुझे लग गया था कि यह बुजुर्ग ही मेरा संकट दूर कर सकता है। बुजुर्ग ने जब अपनी पूरी भड़ास निकाल ली, तो मैंने कहा– 'बिल्कुल सही कह रहे हैं आप! सहजता से कहीं किसी समस्या की सुनवाई ही नहीं है... लगता है आप इसी इलाके के हैं?' बुजुर्ग ने सामने अंगुली दिखाई– 'वो सामने वाला गांव देख रहे हैं, मैं उसी गांव का प्रधान हूं। परमानंद सिंह यादव नाम है मेरा। मैं फ्रीडम फाइटर भी रहा हूं।'

8 (च)

सभ्यता के पहले दिन से सूर्य को लेकर विस्मय का भाव रहा है। सूर्य क्या है, क्यों है और इसके तप्त प्रकाश में विकिरण होता कैसे है। या फिर रात के वक्त जब चांद निकलता है, उसकी रोशनी में ताप क्यों नहीं होता– ऐसे अनेक सवाल मनुष्य के मन में उमड़ते-घुमड़ते रहे हैं। यह सब सभ्यता के शुरुआती चरण की बातें हैं। मगर बाद में जीवन के अनुभवों के साथ-साथ मनुष्य ने अनेक शिल्प रचने शुरू कर दिए– चित्रकला, संस्थापन, संगीत, साहित्य आदि। साहित्य की एक शाखा है नाट्यशिल्प। हालांकि आजकल अनेक शिल्पों के सामंजस्य से इस शिल्प को एक स्वस्थ और मर्यादाशील चरित्र प्राप्त हुआ है। आधुनिक नाट्यशिल्प का अन्यतम अंग है– प्रकाश। नाटक में इसकी उपयोगिता को लेकर चर्चा जरूरी है।

नाट्यशिल्प के शुरुआती चरण से ही इसमें प्रकाश-व्यवस्था की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। जिस तरह आंख मनुष्य के बाहरी और भीतरी जीवन को देखती है उसी प्रकार प्रकाश-व्यवस्था के जरिए दर्शक को नाटक के बाहरी और भीतरी जीवन को देखने का अवसर मिलता है। पुराने समय में आज की तरह नाटकों में नाट्य सज्जा की व्यवस्था नहीं थी, लेकिन उस वक्त भी जब हमारे देश में संग, जात्रा या फिर विदेशों में इसी प्रकार के नाटक खेले जाते थे, प्रकाश-व्यवस्था पर निर्भरता रहती थी। प्राचीन ग्रीस में या फिर मध्यकालीन इंग्लैंड में ज्यादातर नाटक दिन की रोशनी में खेले जाते थे। जब आसमान में सूरज पूरी तरह चमक रहा होता था तभी नाटक खेले जाते थे। फ्रांसिस फर्ग्यूशन के लेख से हमें जानकारी मिलती है कि शेक्सपियर का थिएटर भी इसी प्रथा का किंचित विस्तार था। इतना ही

Scanned with CamScanner

नहीं, नाट्यवस्तु और घटनाओं को प्रस्तुत करते समय इस प्रकाश-व्यवस्था को ध्यान में रखते हुए अनेक कौशलों का इस्तेमाल किया जाता था। हमारे देश में भी संग, पाला, पांचाली कथकता या जात्रा में प्रकाश कौशल का विशेष उपयोग नहीं होता था, फिर भी प्रकाश-व्यवस्था की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती थी। बिना प्रकाश-व्यवस्था के ये सब आयोजन नहीं हो सकते थे, जमते भी नहीं।

—×—

Scanned with CamScanner